॥ श्रीहरिः ॥

280▲

साधनोपयोगी पत्र

गीताप्रेस गोरखपुर

GITA PRESS, GORAKHPUR [SINCE 1923]

जयदयाल गोयन्दका

॥ श्रीहरिः ॥

साधनोपयोगी पत्र

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

जयदयाल गोयन्दका

॥ श्रीहरिः ॥

निवेदन

यह परमार्थ-पत्रावलीका तीसरा भाग है। इसमें श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके बहत्तर पत्रोंका संग्रह है। श्रीजयदयालजीके पास सैकड़ों पत्र आते हैं और उनमें भाँति-भाँतिकी जिज्ञासाएँ रहती हैं। श्रीजयदयालजी बड़ी सरल भाषामें उनके उत्तर दिया करते हैं। कई पत्रोंमें तो बड़ी-बड़ी गहन समस्याओंका समाधान रहता है। अपने जीवनको निष्पाप, सदाचारमय और पारमार्थिक साधनसम्पन्न बनानेके कार्यमें इन पत्रोंसे बहुत ही सहायता मिलती है। इससे पहले पत्रावलीके दो भाग प्रकाशित हो चुके हैं और उनसे बहुत लोग लाभ उठा रहे हैं। आशा है कि ये पत्र अज्ञानके अन्धकारमें पड़े हुए मनुष्योंको सुन्दर परमार्थका प्रकाश और मार्गपर आरूढ़ साधकोंको अनुभवी पथप्रदर्शकका काम देंगे।

गीताभवन, ऋषिकेश, हिमालय
प्रथम आषाढ़ शुक्ल त्रयोदशी,
संवत् २००७ वि०

—हनुमानप्रसाद पोद्दार
कल्याण-सम्पादक

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

विषय		पृष्ठ-संख्या
१- आनन्दमय ब्रह्मका ध्यान	....	९
२- व्यवहारकालमें भी भगवान्की शरण	....	१०
३- वैराग्य और चेतावनी	....	१२
४- भजनके चार साधन और समयकी अमोलकता	....	१३
५- नाम-जपका सर्वोत्तम स्वरूप	....	१४
६- चित्त स्थिर करनेके उपाय	....	१६
७- भगवान्में मन लगानेके लिये नाम-जप और प्रेमकी आवश्यकता		१७
८- निर्गुण-निराकारके ध्यानका तत्त्व-रहस्य	....	१८
९- भजन-ध्यानकी लगनके लिये प्रोत्साहन	....	२०
१०- भजन-ध्यानके प्रभावसे व्यापारका सुधार	....	२२
११- विषय-विषके नाशके लिये रामनामकी बूटी	....	२३
१२- भजन-ध्यानका प्रभाव	....	२४
१३- निर्गुण-निराकार-ध्यानकी स्थितिके लक्षण	....	२६
१४- सत्संगका रहस्य	....	२८
१५- फिजूलखर्ची और कुरीतियोंको हटानेके लिये प्रेरणा	....	२८
१६- भगवद्भक्तिविषयक महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर	....	३६
१७- आत्महत्या कभी नहीं करनी चाहिये	....	४१
१८- कार्यकालमें साधन कैसे किया जाय?	....	४५
१९- घरवालोंको संतोष कराते हुए उपासना करनेके लिये प्रोत्साहन		४८
२०- कर्म और ईश्वरभक्तिविषयक दस प्रश्नोंके तात्त्विक उत्तर		५०
२१- पिताकी आज्ञाकी रक्षा करते हुए धर्मपालनपर दृढ़ता	....	५५
२२- पिताकी आज्ञाकी रक्षा करते हुए धर्मपालनपर दृढ़ता	....	५७
२३- अध्यात्मविषयक तीस प्रश्नोत्तर	....	५९
२४- गृहस्थोंके लिये दस बातें	....	६९
२५- चेतावनी	....	७३
२६- ध्यानका विषय	....	७४
२७- साधनके लिये जोशकी बातें	....	७५

२८- ध्यानके लिये उत्साह ७६
२९-साधनके लिये सावधानी ७७
३०-भगवत्प्रेमके लिये चेतावनी ७७
३१- समय व्यर्थ न बितानेकी प्रेरणा ७७
३२- कर्तव्यका विचार ७८
३३- असली पश्चात्ताप और भगवत्प्रेमके लिये प्रेरणा ७९
३४- समयकी अमूल्यता ८०
३५- प्रेमका विषय ८१
३६- भगवत्प्रेमके उपाय ८२
३७- भगवद्भावोंका प्रचार ८३
३८- संयमकी आवश्यकता ८४
३९- तेज साधनके लिये प्रेरणा ८५
४०- जगज्जनार्दनकी सेवा ८६
४१- निराकार भगवान्‌की भक्ति ८६
४२- उच्चकोटिके महात्माओंका विषय ८७
४३- जीवन्मुक्तका अनुकरण ८८
४४- धनकी निन्दा ८८
४५- भगवत्कृपाका आश्रय ८९
४६- लोभका त्याग ८९
४७- भगवान्‌की प्राप्तिका उपाय ९०
४८- सत्संगका प्रचार कैसे हो? ९०
४९- शास्त्राभ्यासके लिये प्रेरणा ९१
५०- साधनके लिये चेतावनी ९२
५१- गीताभ्यासके लिये प्रोत्साहन ९३
५२- भगवान्‌का नित्य-स्मरण ९४
५३- कर्तव्यपालनपर जोर ९४
५४- मांस-निषेध आदिके विषयमें प्रश्नोत्तर ९५
५५- लौकिक और आध्यात्मिक तिरसठ प्रश्नोत्तर १०४
५६- कार्य करते हुए भगवत्प्राप्तिकी साधना ११७
५७- गुरुडमका विरोध १२१
५८- प्रकृतिके सुधार और भगवान्‌में मन लगानेका विषय १२५
५९- ब्रह्मज्ञान और गुरुके सम्बन्धमें विचार १२८

६०- श्रीशालग्राम, तुलसी और माला-तिलकका विषय १३२
६१- अनुष्ठान आदि विषयक एकादश प्रश्नोत्तर १३४
६२- काम करते हुए भगवान्के नाम-रूपका स्मरण १३७
६३- पूजा-पाठका विषय १४०
६४- दुःखोंकी प्राप्तिमें भी भगवद्विधानका अनुभव १४३
६५- श्रद्धा करनेयोग्य भगवान् ही हैं! १४५
६६- क्षेपकरहित मानसके पाठ और गीतादि ग्रन्थोंमें
अधिकारका विषय १४७
६७- अन्यायसे रुकनेकी प्रेरणा १५०
६८-उपासना-सम्बन्धी पाँच शंका-समाधान १५१
६९-नाम-जप और भगवद्विषयक लालसा १५२
७०-आत्म-समर्पण १५३
७१-साकार-निराकारका रहस्य १५४
७२-विद्यार्थियोंके लिये उपयोगी शिक्षाएँ १५६

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

शास्त्रोंका अवलोकन और महापुरुषोंके वचनोंका श्रवण करके मैं इस निर्णयपर पहुँचा कि संसारमें श्रीमद्भगवद्गीताके समान कल्याणके लिये कोई भी उपयोगी ग्रन्थ नहीं है। गीतामें ज्ञानयोग, ध्यानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, आदि जितने भी साधन बतलाये गये हैं, उनमेंसे कोई भी साधन अपनी श्रद्धा, रुचि और योग्यताके अनुसार करनेसे मनुष्यका शीघ्र कल्याण हो सकता है।

अतएव उपर्युक्त साधनोंका तथा परमात्माका तत्त्व रहस्य जाननेके लिये महापुरुषोंका और उनके अभावमें उच्चकोटिके साधकोंका श्रद्धा, प्रेमपूर्वक सङ्ग करनेकी विशेष चेष्टा रखते हुवे गीताका अर्थ और भाव सहित मनन करते तथा उसके अनुसार अपना जीवन बनानेके लिये प्राण पर्यन्त प्रयत्न करना चाहिये।

निवेदक—

कार्तिक शुक्ला ५ २००६ — जयदयाल गोयन्दका।

गुं० बांकुड़ा

॥ श्रीपरमात्मने नमः ॥

साधनोपयोगी पत्र

[१]

आपने पूछा कि जब एकमात्र आनन्द-ही-आनन्द है, उसके सिवा और कुछ है ही नहीं, तब यह संसार क्यों दीख पड़ता है? सो ठीक है। जिस समय एकमात्र आनन्द-ही-आनन्द रह जाता है, उसके सिवा और कुछ नहीं रह जाता, उस समय यह संसार किंचित् भी नहीं भासता। परन्तु ऐसी स्थिति यों ही नहीं, साधनाके द्वारा प्राप्त होती है। वह साधना है निरन्तर संसारके अभावका अनुभव करते हुए एकमात्र परमात्माकी सत्ताको सर्वत्र देखना। इसी साधनाका अभ्यास करनेसे उपर्युक्त स्थिति प्राप्त होती है। साधनावस्थामें जो कल्पितरूपसे संसार दीखता है, सो आनन्दमयको ही दीखता है। आनन्दमय जिस कालमें द्रष्टा होकर संसारको देखता है, संसार दीखने लग जाता है और जब नहीं देखता तब स्वयं आनन्दमय ही रह जाता है, संसारका अत्यन्ताभाव हो जाता है; क्योंकि संसार वास्तवमें है नहीं। अथवा यों कहें कि जब आनन्दमय द्रष्टा होकर कल्पना करता है, तब बिना हुए ही संसार भासने लगता है और जब वह संसारको कल्पनामात्र जानकर अपना संकल्प छोड़ देता है, तब संसारका अभाव होकर केवल आनन्दमय परमात्मा ही रह जाता है।

आपने पूछा कि 'मैं कौन हूँ?' इसका उत्तर यह है कि जबतक भ्रम है तबतक आप जीव हैं। जब यह भ्रम मिट जाता है, तब 'मैं' का सर्वथा अभाव हो जाता है और एकमात्र आनन्दमय परमात्मा ही रह जाता है।

परमात्माकी प्राप्ति दो प्रकारसे होती है—एक सगुणरूपसे, दूसरे निर्गुणरूपसे। सगुणकी भिन्नरूपसे और निर्गुणकी अभिन्नरूपसे प्राप्ति होती है। अस्तु,

यह सब ध्यानमें रखकर आपको विशेषरूपसे साधनकी चेष्टा करनी चाहिये। साधनकी चेष्टा धन कमानेकी चेष्टासे अत्यधिक बलवती होनी

चाहिये। साधनकी चेष्टाके लिये एक बार ही विशेषरूपसे प्रयत्न करना होगा, फिर तो उसमें आनन्दका अनुभव होनेके बाद आप-से-आप तीव्र चेष्टा होने लगेगी।

[२]

आपने लिखा कि अमुक स्थानमें ध्यानकी जैसी स्थिति थी, वैसी अब नहीं है; सो इसके कारणपर आपको स्वयं विचार करना चाहिये और जो त्रुटियाँ हों उन्हें दूर करके पुनः वैसी स्थिति, बल्कि उससे भी अधिकाधिक अच्छी स्थिति प्राप्त करनेका प्रयत्न करना चाहिये। भगवान्का गुणानुवाद करने, उनके प्रभाव-रहस्य आदिकी बातें बाँचने-सुनने तथा नाम-जप करनेका अभ्यास निरन्तर हो—इसके लिये उत्कण्ठापूर्वक तीव्र चेष्टा होनी चाहिये। इस चेष्टाके लिये यदि आपके पास निजका बल कम है, तो कोई चिन्ताकी बात नहीं। नारायणके चरणोंका आश्रय लेकर, हृदयमें विश्वास रखकर प्रयत्न करते रहिये; फिर भगवत्कृपासे आप-से-आप सब ठीक हो सकता है।

आपने लिखा कि अमुक स्थानमें ध्यान-धारणाकी जैसी स्थिति थी, वह मेरे पुरुषार्थकी नहीं थी; सो ठीक है। ऐसा समझना बहुत उत्तम है, परन्तु आप अपनी ध्यान-धारणाकी उस स्थितिको जिसकी कृपाका फल समझते हैं, उसकी पूर्ण कृपा तो अब भी उसी प्रकार बनी हुई है। फिर वे आपको ध्यान-धारणाकी उसी स्थितिमें क्यों न ला देंगे? यदि नहीं लाते तो न लावें, आप अपनी ओरसे जहाँतक हो सके उन श्रीनारायणदेवके भजन-ध्यानकी ही चेष्टा करते रहिये; क्योंकि आपका कर्तव्य यही है। फिर आपका यह सतत कर्तव्य-पालन ही आगेकी स्थिति सुधार देगा। क्योंकि कर्तव्यपरायण अथवा पुरुषार्थी व्यक्तिका ध्यान वे स्वयं रखते हैं।

आप भक्ति-ज्ञान-वैराग्यविषयक पुस्तकोंको देखनेकी चेष्टा करते हैं, सो ठीक है। जब-जब भजन-ध्यानमें अधिक भूलें हों, तब-तब सद्ग्रन्थोंको बाँचने-सुनने तथा भगवद्भक्तोंका सत्संग करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। वास्तवमें प्रेमके अभावके कारण ही भूलें अधिक होती

हैं। सो विश्वासपूर्वक भजन और सत्संग करते रहना चाहिये, फिर उन्हींके द्वारा भूलोंका निवारण और प्रेमका उदय हो सकता है। आपका यह लिखना कि भजन-ध्यानकी स्थिति रखनेमें काम-काज नहीं होता और सांसारिक काम-काज करते रहनेपर भजन-ध्यानमें भूलें अधिक होती हैं, ठीक है। इसका एकमात्र उपाय नारायणका स्मरण है। काम-काजमें यदि कुछ कमी आवे तो चिन्ता नहीं करनी चाहिये; बल्कि सब कुछ नारायणकी ही मर्जीसे हो रहा है। ऐसा मानकर प्रसन्न मनसे तत्परतापूर्वक भजन-साधन करते रहना चाहिये।

शरणागतिकी बातें गीताके १८वें अध्यायके ६२ और ६६वें श्लोकोंमें हैं, उन्हें देखना चाहिये। चिट्ठीमें विशेष विस्तारसे लिखा जाना कठिन है; फिर भी कुछ बातें लिखी जाती हैं। शरणागति चाहनेवालेको मनसे भगवान्‌के सच्चिदानन्दघनस्वरूपका चिन्तन, बुद्धिसे सर्वत्र नारायणकी ही सत्ताका विचार, श्वाससे भगवन्नामका जप, वाणीसे भगवान्‌का गुणानुवाद, कानोंसे भगवत्कथा-कीर्तनका श्रवण, नेत्रोंसे भगवद्भक्तोंका दर्शन और शरीरसे संत-महात्माओं, गुरुजनों एवं सर्वभूतरूप भगवान्‌की सेवा-शुश्रूषा करनी चाहिये। यह समझना चाहिये कि माता, पिता, भाई, बन्धु, स्त्री, पुत्र, धन इत्यादि सब कुछ नारायणका ही है; मेरा कुछ भी नहीं है—यहाँतक कि मेरा शरीर भी उन्हींका है। फिर ऐसा समझते हुए जो कुछ करना हो, भगवत्-सेवाके भावसे करना चाहिये। आसक्ति किसी पदार्थमें नहीं रखनी चाहिये। अपनी इच्छाका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये, उन्हींकी इच्छामें अपनी इच्छा मिला देनी चाहिये। संसार वास्तवमें नाशवान् है; परन्तु यदि यह सत्य मालूम पड़ता है तो उसमें आनन्दमय भगवान्‌को देखना चाहिये तथा चेष्टामात्रमें सर्वत्र लीलाका भाव करना चाहिये। प्रणव अर्थात् 'ॐ' परमेश्वरका नाम है, उसके अर्थ अर्थात् सत्-चित्-आनन्दघनकी शरण ग्रहण करनी चाहिये। सच्चिदानन्दघनके सिवा कुछ है ही नहीं, इसकी धारणा करनी चाहिये। अनन्त, अपार, अचिन्त्य आनन्दमें मग्न हो जाना चाहिये। संसारमें जो कुछ भासता हो, उसे स्वप्नवत् मानकर अविचल, अपार, शान्त एवं

व्यापक आनन्दमय परमात्माको कभी भूलना नहीं चाहिये। शरीर एवं संसारके समस्त पदार्थ विनाशशील हैं, इनके लिये हर्ष-शोक नहीं करना चाहिये। ममता, मोह, लोभ, स्वार्थ, अहंकार, कर्तृत्वाभिमान आदि सबको छोड़ देना चाहिये। पासमें जो कुछ हो, उसे नारायणके लिये न्योछावर कर देना चाहिये। उनके स्मरण-चिन्तनमें अपनेको विलीन कर देना चाहिये। इस प्रकार शरणागतिकी बहुत-सी बातें हैं। इन सबकी साधना अनन्यभावसे करनी चाहिये। फिर कोई चिन्ताकी बात नहीं है।

[३]

इतने दिन हो गये, अभीतक आपने भगवान्‌की प्राप्ति नहीं की; तब फिर क्या लिखा जाय? किस बलपर आप निश्चिन्त होकर बैठे हैं? विश्वास कीजिये—जीवनका कुछ भी ठिकाना नहीं है, यह शरीर किसी भी क्षण मिट्टीमें मिल जानेवाला है, संसारके अन्य समस्त पदार्थ भी विनष्ट होनेवाले हैं; फिर आप इन विनश्वर वस्तुओंके लिये अपने अनमोल समयको क्यों बिता रहे हैं? परमात्माकी प्राप्तिके प्रयत्नोंमें आनन्द-ही-आनन्द है; परन्तु यदि कुछ समयके लिये कष्ट ही उठाना पड़े और उससे सदाके लिये भगवत्प्राप्तिद्वारा अपार आनन्द हो जाय तो उस कष्टका प्रसन्नतापूर्वक वरण करना चाहिये। इस नाशवान् संसारके थोड़े समयके आरामसे यदि चौरासी लाख बार गलेमें फाँसी पड़ती हो तो उसे तत्काल छोड़ देना चाहिये। इस क्षणभंगुर शरीरमें यदि चार-पाँच सेर मांस अधिक हो जाय तो क्या और कम हो जाय तो क्या? अच्छे कपड़े पहननेको मिले तो क्या और मामूली कपड़े पहननेको मिले तो क्या? सूखी रोटी खायी तो क्या और बढ़िया-बढ़िया पक्वान्न खाये तो क्या? बहुमूल्य मखमलके बिछौनेपर सोये तो क्या और चटाईपर सोये तो क्या? जो इन सबको समान मानता है, जिसके दिन नारायणके प्रेममें बीतते हैं, जिसका चित्त नारायणके स्मरण-चिन्तनमें रमा हुआ है, वही मनुष्य धन्यवादके योग्य है; नहीं तो मानव-जन्म व्यर्थ है, बल्कि उस मनुष्यसे पशु भी अच्छे हैं। अतः

अबसे भी चेतिये। मैं यह बार-बार कहूँगा कि जिसने मनुष्यका शरीर पाकर नारायणको नहीं भजा, उनकी प्राप्ति नहीं की, उसे मानव-जन्म ग्रहण करनेकी कोई आवश्यकता नहीं थी।

[४]

आपका पत्र मिला। भजन करनेके चार साधन लिखे जाते हैं। इनको ध्यानमें रखना चाहिये—

(१) श्वासद्वारा भगवन्नामका जप करना चाहिये।

(२) जिसके नामका जप करें, उस नामीके स्वरूपका मनसे चिन्तन करना चाहिये; अर्थात् स्वरूपके ध्यानसहित नामका जप करना चाहिये। यदि सगुणवाचक नाम हो तो सगुणरूपका ध्यान करते हुए अथवा निर्गुणवाचक नाम हो तो सत्-चित्-आनन्द आदि विशेषणोंके सहित निर्गुण ब्रह्मका ध्यान करते हुए नाम-जप करना चाहिये।

(३) सर्वव्यापक परमात्माके स्वरूपमें स्थित रहते हुए समष्टि बुद्धि—ज्ञानचक्षुओंद्वारा संसार, शरीर और कर्मोंका द्रष्टा-साक्षी रहना चाहिये। अहंकार और कर्तृत्वाभिमानका त्याग कर देना चाहिये। इन्हींसे अन्तःकरणमें राग-द्वेषादि विकारोंका उदय होता है और जबतक अन्तःकरणमें इन विकारोंका अनुमान हो तबतक सर्वव्यापी परमात्माके स्वरूपमें स्थित होनेमें कमी समझनी चाहिये।

(४) चित्तको सदा प्रफुल्ल रखना चाहिये। बिना हुए भी प्रफुल्लताका अनुभव करना चाहिये।

चौथी बात प्रथम श्रेणीके अर्थात् नये साधकके लिये है। ऊपरकी तीनों स्थितियोंमें स्थित रहनेसे स्वतः प्रसन्नता बनी रहती है; साथ ही हृदयमें निर्मलता, शरीरमें हलकापन, दृश्य जगत्में सत्ताका अभाव, इन्द्रियोंमें चेतनता, आलस्यका अभाव, वैराग्यकी वृद्धि इत्यादि बातें भी आप-से-आप आ जाती हैं।

भजन जितना हो, बहुमूल्य होना चाहिये। जो भजन निष्कामभाव तथा गुप्तरीतिसे और ध्यानके साथ निरन्तर होता है, वही बहुमूल्य भजन है।

सो निष्कामभाव और गुप्तरीतिकी दृष्टिसे तो आपलोगोंका भजन ठीक ही मालूम पड़ता है, केवल सच्चिदानन्दघन भगवान्‌के निरन्तर ध्यानाभ्यासमें त्रुटि दीख पड़ती है। उसकी पूर्तिके लिये शीघ्रातिशीघ्र प्रबल चेष्टा करनी चाहिये।

आपने कड़ी बात लिखनेके लिये लिखा, सो आपका प्रेम है; परन्तु मैं इसका अधिकारी नहीं हूँ। कड़ी बातें तो गुरुजन ही लिख सकते हैं। हाँ, आप सबके प्रेमके बलपर सीधी-सादी भाषामें मैं अवश्य लिखता और कहता आया हूँ कि समयका मूल्य पहचानना चाहिये, उसे व्यर्थ नहीं गँवाना चाहिये। मूर्खता और मोहवश अपने अनमोल समयको क्षणभंगुर भोग्य पदार्थों, झूठी मान-बड़ाइयों तथा किसीके भी मुलाहजेमें नहीं बिताना चाहिये। भगवान्‌ने कृपा करके जिस कामके लिये मनुष्यका शरीर दिया है, उसी कामको सबसे पहले करना चाहिये। उसके अर्थात् भगवद्भजनके समान और कोई भी आवश्यक काम नहीं है। इसलिये जबतक इस शरीरका नाश नहीं हो जाता, तबतक जो करना हो कर लेना चाहिये। यदि इस शरीरको मिट्टीमें ही मिलाना है तो भगवत्प्राप्तिके लिये ही मिलाना चाहिये, जिससे फिर कभी इस तुच्छ शरीरको धारण करके इसे मिट्टीमें मिलानेकी नौबत न आये।

[५]

भगवान्‌के नामका जप यदि निम्नलिखित पाँच बातोंको याद रखते हुए किया जाय तो शीघ्र ही विशेष लाभ हो सकता है—

(१) जिस प्रकार कोई कुलटा स्त्री किसी पर-पुरुषके प्रेमको छिपाकर उसका चिन्तन करती हुई घरका काम-काज करती है, उसी प्रकार गुप्तभावसे भगवन्नामका जप करना चाहिये।

(२) जप करते समय भगवन्नामके प्रति अत्यधिक आदरका भाव रखना चाहिये। जो नाम-जप मनोयोगके साथ किया जाता है, उसीमें आदरका भाव समझा जाता है; अन्यथा वह बिना मनके की हुई सेवा, सन्ध्या आदिकी तरह तिरस्कारपूर्वक ही होता है। भगवान्‌के प्रभावको न

जानना भी उनका तिरस्कार करना ही है। इसी प्रकार भगवन्नामका प्रभाव जाने बिना जप करना एक प्रकारसे उसका तिरस्कार करना ही है। यद्यपि तिरस्कारपूर्वक किये जानेवाले नाम-जपसे भी कोई हानि नहीं होती, परन्तु लाभ कम होता है। इसलिये भगवन्नामका प्रभाव जानकर मनसे चिन्तन करते हुए जप करना चाहिये।

(३) नाम-जपके समय उसके अर्थका मनन करना चाहिये अर्थात् नामीका स्मरण करते हुए नाम-जप करना चाहिये। नाम-नामपर नामीका ध्यान करते रहना चाहिये। ऐसा करनेसे नामीका निरन्तर ध्यान होने लगता है; क्योंकि ध्यानके परिपक्व हो जानेपर ध्यान छूटता नहीं।

(४) भगवन्नामका जप निष्कामभावसे करना चाहिये। प्राण भी क्यों न चले जायँ, परन्तु प्रभुसे कोई याचना नहीं करनी चाहिये। अपनेमें किसीको शाप या वरदान देनेकी शक्ति नहीं समझनी चाहिये। भजन, ध्यान और सेवाके द्वारा स्वार्थसाधन करना ऐसा ही है, जैसे किसीको हीरामणि देकर बदलेमें पत्थर लेना है। इसलिये नाम-जपके साथ कोई शर्त नहीं रखनी चाहिये।

(५) ऊपर लिखे अनुसार नाम-जपका अभ्यास निरन्तर करना चाहिये। कभी भी उसका तार नहीं टूटने देना चाहिये। अभ्यास बढ़ जानेपर काम-काज करते हुए भी निरन्तर नाम-जप किया जा सकता है। ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार चरखा कातनेवाली स्त्री सूत कातती जाती है, उसका तार नहीं टूटने देती और दूसरोंसे बातें भी करती जाती है।

संवत् १६०० के आस-पास इस देशमें अनेकों भक्तोंका प्रादुर्भाव हुआ। उन्होंने समयको कुछ सुधारा था। जब समय कुछ अधिक गिर जाता है, तब भगवान् अपने भक्तोंको प्रेरणा करके उनके द्वारा समयका सुधार करवा देते हैं और जब पाप बहुत अधिक बढ़ जाता है, तब भगवान् स्वयं अवतार लेकर पृथ्वीका भार हलका करते तथा धर्मकी स्थापना करते हैं। इन दिनों कलियुगका प्रभाव विशेषरूपसे फैल गया है। इसलिये भक्तोंको भगवान्‌की प्रेरणा होती है कि समयको सुधारना

चाहिये। ऐसा अवसर पाकर भी जो अपने उद्धारका प्रयत्न नहीं करेंगे, वे मन्दबुद्धि समझे जायँगे तथा जन्म-मरणके चक्करसे छूट नहीं सकेंगे। रामचरितमानसका यह दोहा याद रखनेयोग्य है—

जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥

इस समय भगवान्‌की प्रेरणा भक्तिमार्गकी उन्नति करनेके लिये है। अतः इस समय भक्तिमार्गसे बहुत जल्द उद्धार हो सकता है। ऐसा मौका सदा नहीं रहेगा। जब दूकानदारको माल बेचनेकी गरज होती है, तब चीजें बहुत मंदी बिकती हैं और जब उसे गरज नहीं होती, तब बहुत ऊँचा दाम देनेसे तथा कोशिश करनेसे भी चीज नहीं मिलती। ऐसा समझकर इस मौकेको हाथसे नहीं जाने देना चाहिये।

भगवान्‌का भक्त इच्छा करे तो वह अकेला ही हजारों मनुष्योंका उद्धार कर सकता है; जैसे एक धर्मात्मा पुरुष हजारों मनुष्योंके सहित डूबती हुई नौकाको पार लगाना चाहे तो लगा सकता है। भक्तराज प्रह्लादपर प्रसन्न होकर भगवान्‌ने जब उन्हें वर माँगनेको कहा तो उन्होंने सबके उद्धारके लिये प्रार्थना की। सबका उद्धार न होनेपर भी उनके द्वारा हजारों आदमियोंका उद्धार अवश्य हुआ। अतः कटिबद्ध होकर विश्वासके साथ भक्तिके साधनमें लग जाना चाहिये।

---

[६]

आपने चित्त स्थिर होनेका उपाय पूछा, सो ठीक है। चित्त स्थिर करनेके कुछ उपाय नीचे लिखे जाते हैं। जो उपाय जँचे, उसे काममें लाना चाहिये। यदि आप एक भी उपायको कटिबद्ध होकर काममें लायेंगे तो उससे बड़ा लाभ हो सकता है। उपाय ये हैं—

(१) जहाँ-जहाँ चित्त जाय, वहाँ-वहाँसे उसको हटाकर भगवान्‌में लगाना चाहिये।

(२) जहाँ-जहाँ मन जाय, वहाँ-वहाँ मनसे भगवान्‌का नाम बाँचना चाहिये। सर्वत्र भगवान्‌का नाम लिखा हुआ देखना चाहिये। जिस प्रकार

हनुमान्‌जीने प्रत्येक वस्तुमें भगवन्नाम देखा था, उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्यके रोम-रोममें, प्रत्येक वस्तुके अणु-अणुमें भूषणमें रत्नकी तरह भगवान्‌के नामको जड़ा हुआ देखनेकी चेष्टा करनी चाहिये। ऐसा अभ्यास करनेसे मन स्थिर हो सकता है।

(३) जहाँ-जहाँ मनकी गति हो, वहाँ-वहाँ गोपियोंकी तरह भगवान्‌की मनोमोहिनी मूर्तिको देखना चाहिये। अपने मनको दृढ़तापूर्वक यह समझा देना चाहिये कि मेरे इष्टदेव सर्वत्र हैं, जहाँ भी जाओगे वहीं तुम्हें उनके दर्शन होंगे। ऐसा अभ्यास करनेसे आप-से-आप मन स्थिर हो जायगा।

(४) जहाँ-जहाँ जो कुछ भासता है, वह सब नाशवान् है—ऐसा समझना चाहिये। प्रतिक्षण मनके द्वारा इस बातका चिन्तन करना चाहिये कि संसारकी समस्त वस्तुएँ क्षणभंगुर हैं, केवल सच्चिदानन्दघन श्रीनारायणदेव ही सत्तावान् हैं और वे सर्वत्र व्याप्त हैं।

(५) श्वास बाहर आनेपर उसे बाहर ही रोककर हृदयमें स्थित सुषुम्ना नाड़ीमें राम-नामका जप सुनना चाहिये। उसको सुननेका अभ्यास करनेसे राम-नामके जपका अनुभव होने लगेगा। फिर उसका ध्यान होने लगेगा और इस प्रकार मन स्थिर हो जायगा। श्वास रोकते समय इसका ध्यान रखना चाहिये कि शक्तिसे अधिक श्वास न रोका जाय।

(६) जोर-जोरसे भगवन्नामका कीर्तन करना चाहिये। उसका ऐसा अभ्यास करना चाहिये कि कीर्तनका तार न टूटने पावे।

और भी बहुत-से उपाय हैं। आप इन उपायोंका अभ्यास करके देख लीजिये। जो अनुकूल पड़े, उसीका अभ्यास करनेसे ठीक रहेगा। पहले-पहल अभ्यास करनेवालेके लिये दूसरे-तीसरे नम्बरके उपाय ठीक हैं।

[७]

आपने लिखा कि रघुनन्दन श्रीरामचन्द्रजी महाराजके चरणकमलोंमें मन लगे, ऐसी कृपा करनी चाहिये; सो कृपा करना एकमात्र कृपालु प्रभुका ही काम है, इसलिये उन्हींकी शरण लेनी चाहिये। मेरे सुनने-समझनेमें ऐसा आया है कि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी महाराजके नामका जप

करनेसे ही उनके चरणोंमें मन लगता है। इसलिये निरन्तर उनके नामका जप करना चाहिये। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजने भी यही कहा है—

देखिअहिं रूप नाम आधीना। रूप ग्यान नहिं नाम बिहीना॥
रूप बिसेष नाम बिनु जानें। करतल गत न परहिं पहिचानें॥
सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिसेषें॥

भगवान्‌के नाम-जपके प्रतापसे न जाने कितने पापी पवित्र हो गये। नाम-जपमें केवल निष्काम प्रेमकी ही आवश्यकता है; भगवान्‌को भक्ति ही प्रिय है। प्राचीन कालमें भक्तिके प्रतापसे बहुत-से भक्त परमधामको चले गये। इसीलिये किसी कविने कहा है—

व्याधस्याचरणं ध्रुवस्य च वयो विद्या गजेन्द्रस्य का
वंशः को विदुरस्य यादवपतेरुग्रस्य किं पौरुषम्।
कुब्जायाः किमु नाम रूपमधिकं किं तत्सुदाम्नो धनं
भक्त्या तुष्यति केवलं न च गुणैर्भक्तिप्रियो माधवः॥*

इसलिये भगवान्‌में प्रेम बढ़ाना चाहिये। प्रेम ही भक्तिका स्वरूप है। अतएव निरन्तर प्रेमसहित नाम-जप करनेका अभ्यास करना चाहिये।

---

[८]

मैंने आपसे पूछा था कि चिट्ठी पढ़ते समय व्यष्टि अन्तःकरणमें किसी प्रकारका भाव यानी विकार होता है या नहीं, उसको आप भय समझ गये; सो भयकी तो कोई बात ही नहीं है। मेरा पूछना तो यह है कि जिस समय आप चिट्ठी बाँचते हैं, उस समय व्यष्टि अन्तःकरणमें किसी प्रकारका भाव अर्थात् हर्ष, संकोच इत्यादि होता है या नहीं। आपने लिखा कि बड़ाई होनेपर व्यष्टि अन्तःकरणमें किंचित् विकारका आभास-सा पड़ता है सो ठीक है, किंतु वह भी नहीं पड़ना चाहिये। चिट्ठियोंमें मैं जो

---

* व्याधका कौन-सा (अच्छा) आचरण था? ध्रुवकी आयु ही क्या थी? गजेन्द्रके पास कौन-सी विद्या थी? कुब्जाका ऐसा क्या विशेष रूप था? सुदामाके पास कौन-सा धन था? विदुरका कौन उत्तम वंश था? यादवपति उग्रसेनका कौन-सा पुरुषार्थ था? भक्तिप्रिय माधव तो केवल भक्तिसे ही सन्तुष्ट होते हैं। गुणोंसे नहीं।

आपका नाम लिखा करता हूँ, उस नामका वाच्य कौन है? अर्थात् आपका अमुक नाम किसका नाम है? आप अपनेको क्या समझते हैं? जब कोई आपका नाम लेकर पुकारता है, तब उस नामका मालिक कौन बनता है? आपने लिखा कि एकमात्र सच्चिदानन्दका भाव तथा अन्य सबका अभाव होकर शरीरके स्थानपर भी आनन्द ही परिपूर्ण हो रहा है, सो इस प्रकारके भावका ज्ञाता कौन है? सच्चिदानन्द परमात्मा तो देश-कालसे रहित हैं, फिर शरीरके स्थानपर आनन्दघन हो रहा है—ऐसा कहना बनता नहीं। क्योंकि शरीरका स्थान भी कल्पित ही है, उसके स्थानका नाम देश है और परमात्मा देशवाले हैं नहीं। देश, काल और वस्तु—जो कुछ भी दृश्य पदार्थ प्रतीत होता है और जो कुछ भी अन्तःकरणके चिन्तनमें आता है, सो सब कल्पित है। सत्ता केवल बोध अर्थात् ज्ञानस्वरूपकी ही है और जो ज्ञान है, वही आनन्द है। किंतु परमात्मा भोगे जानेके योग्य आनन्द नहीं हैं अर्थात् परमात्माका जो आनन्दमय स्वरूप है, वह किसीका ज्ञेय अथवा भोग्य नहीं है। वह स्वयं बोधस्वरूप है, अतएव वही आनन्द है। बोधसे आनन्द भिन्न वस्तु नहीं है। बोधस्वरूप परमात्मा अपने-आप हैं, उनके सिवा और कुछ है ही नहीं—ऐसा वेद-शास्त्र और संत-महात्मा कहते हैं।

अन्तःकरण अर्थात् मनमें जो कुछ दृश्य पदार्थ भासता है, वह सब मनका ही स्वरूप है। मन वास्तवमें कोई वस्तु नहीं है। वह मायाका कार्य है और बिना हुए जो प्रतीत होता है, उसका नाम माया है। इसलिये जो कुछ प्रतीत होता है, वास्तवमें है नहीं। सत्य तो एकमात्र सच्चिदानन्दघन परमात्मा है, परन्तु वह किसीको प्रतीत नहीं होता; क्योंकि वह किसीका विषय नहीं है। वह स्वयं बोधस्वरूप है और बोधस्वरूप होकर ही दृश्य संसारका द्रष्टा हो रहा है। दृश्य संसारकी स्थिति अज्ञानमें है—जिस समय यह बात समझमें आ जायगी, उस समय दृश्य असत् संसारका अत्यन्त अभाव हो जायगा अर्थात् उसके चित्रका लोप हो जायगा। फिर द्रष्टामें द्रष्टापनका भाव नहीं रह जायगा; क्योंकि जब दृश्य ही नहीं है, तब द्रष्टा किसका? फिर केवल विज्ञानानन्दघनके सिवा और कुछ रहता ही नहीं। इसीको वेद और शास्त्र सच्चिदानन्दघन परमात्माकी प्राप्ति कहते हैं।

आपने लिखा कि सर्वव्यापीमें भी अहंभाव नहीं समझा जाता, एकमात्र परमात्माके होनेका ही निश्चय होता है; सो इस प्रकारका निश्चय और सर्वव्यापित्वका ज्ञान किसको है? जिस समय ऊपर लिखे अनुसार केवल विज्ञानानन्दघन परमात्मा ही रह जाता है, उस समय 'सर्व' और 'व्यापक' शब्द भी नहीं बनते तथा परमात्माके होनेका निश्चय करनेवाला भी कोई नहीं रह जाता; उस समय केवल बोध ही रह जाता है। वह बोध ही आनन्द है और इतना घन है कि उसमें और किसीका होना बन ही नहीं सकता।

आपको साधनकी अवस्थाका अनुमान कैसा होता है? अब आप अपने लिये क्या कर्तव्य समझते हैं? व्यष्टि अन्त:करणमें यदि कोई स्फुरणा होती है तो वह सत्ताके अभावको लेकर ही होती होगी? आपने लिखा कि समष्टिमें भी 'मैं' का भाव होना नहीं समझा जाता, सो बड़े आनन्दकी बात है। फिर भगवत्प्राप्तिमें क्या त्रुटि है? ध्यानकी स्थिति सब समय समानभावसे होती है या सामान्य-विशेषभावसे होती है? सब समय एक-सी ही स्थिति होनी चाहिये।

[९]

आपने नाम-जपमें भूल होनेकी बात लिखी, सो सत्संग और शास्त्रद्वारा भगवान्‌के गुण और प्रभावकी बातें जाननेकी चेष्टा करनी चाहिये। भगवान्‌का गुण-प्रभाव जान लेनेपर उनके नाम-जपमें भूल नहीं हो सकती। आपने लिखा कि भजनमें भूल होनेपर जब उसकी याद आती है तब पश्चात्ताप होता है। परन्तु उसका निरन्तर स्मरण नहीं रह पाता; सो ठीक है। अभ्यासके द्वारा अभ्यास बढ़ता है। यदि उत्साहके साथ चेष्टा की जाय तो उससे संकल्प-विकल्प मिटकर एवं चिन्ताका नाश होकर भगवान्‌के स्वरूपमें रमण हो सकता है। भगवान्‌के भजन-ध्यानकी लगनके समान संसारमें कोई वस्तु नहीं है। लगन उसीका नाम है, जिसमें अपने शरीरका भी ज्ञान न रहे। भगवान्‌के प्रति प्रेम बढ़ानेमें अपना तन, मन, धन सब कुछ लगा देना चाहिये।

भजन-सत्संगका तीव्र अभ्यास करनेसे पापोंका जल्दी ही नाश हो सकता है। भजन निष्कामभावसे ही होना चाहिये। सत्संग और भजनके द्वारा संसारकी मिथ्या वस्तुओंकी इच्छा न रखना ही निष्कामभाव है। मृत्युको हर समय याद रखना चाहिये। सम्पूर्ण संसार तथा शरीरको क्षणभंगुर समझना चाहिये। भगवान्‌के नामका जप और उनके स्वरूपके ध्यानका अभ्यास तेज होना चाहिये। पीछे कोई हर्ज नहीं। भजन-ध्यान करनेपर यदि भगवान् इस जन्ममें नहीं मिलेंगे तो दूसरे जन्ममें उत्तम योनि तो मिलेगी ही; पूर्वसंस्कारवश दूसरे जन्ममें भजन-ध्यान और भगवान्‌में प्रेम होगा और फिर भगवान् मिल जायँगे। इस प्रकार दूसरा भी जन्म हो तो कोई हानिकी बात नहीं है। परन्तु चेष्टा तो ऐसी ही करनी चाहिये कि इसी जन्ममें भगवान् मिल जायँ। मनुष्य जैसा कर्म करता है, उसीके अनुसार उसको योनि मिलती है; परन्तु भगवान्‌के भजन-ध्यानका प्रताप ऐसा है कि वह नीच कर्म करनेवालेके भी पापोंका नाश कर देता और उसको उत्तम योनि तथा उत्तम लोकमें ले जाता है। जिनका भजन-साधन बहुत तेज हो जाता है, उनको भगवान् यहीं इसी जन्ममें मिल जाते हैं; उन्हें फिर जन्म नहीं धारण करना पड़ता, वे भगवान्‌के परमधामको चले जाते हैं। परन्तु जो मनुष्य जान-बूझकर पाप करता है और यह सोचता है कि पीछे भजन-साधनके द्वारा पापोंको नष्ट कर दूँगा, वह धोखा खाता है। उसके पापोंका नाश तभी होगा, जब वह उनका फल-भोग कर लेगा। इसलिये भजनका सहारा लेकर जान-बूझकर पाप नहीं करना चाहिये। जो पाप पहले अनजानमें हो गये रहते हैं, उन्हींका नाश भजन-ध्यानके साधनसे हो सकता है। इसलिये श्रद्धा, विश्वास और सदाचार-पालन-पूर्वक भजन-ध्यान तथा सत्संगका साधन तीव्ररूपसे करना चाहिये। मनुष्य-जन्म केवल पेट भरनेके लिये ही नहीं मिला है। पेट भरनेके लिये तो कीट, पतंग, कूकर, शूकर, गधे और कौए भी आयुपर्यन्त चेष्टा करके योनि बदलते रहते हैं। यदि मनुष्यने भी उन्हींकी तरह जन्म बिताया तो उसका जन्म ग्रहण करना व्यर्थ है। ऐसे जन्मको

धिक्कार है। मानव-जन्म बड़ा अनमोल है, इसलिये प्रत्येक मनुष्यको उसका फल पानेकी चेष्टा करनी चाहिये, उसे व्यर्थ नहीं गँवाना चाहिये। भगवान्‌की प्राप्ति ही मनुष्य-जन्मका एकमात्र चरम फल है।

---

[१०]

आपने लिखा कि भगवन्नामका जप अधिक नहीं हो पाता, दूकानके काम-काजके संकल्प अधिक रहते हैं; सो ठीक है। ऐसी स्थितिमें सावधान होकर जपका अभ्यास बढ़ानेकी चेष्टा करनी चाहिये। दूकानका काम करते हुए जप करनेमें कुछ लगता नहीं है। दूकानके काम-काजके संकल्प होते हैं तो भले ही हों, जप अधिक करना चाहिये; उससे आप-से-आप संकल्प कम हो सकते हैं।

आपने लिखा कि दूकानके काम-काजमें लाभके कारण झूठ अधिक बोलना पड़ता है, सो यह बड़ी हानिकर बात है। असली वस्तु नारायण ही हैं, उन्हींका लोभ करना चाहिये। रुपया प्रारब्धमें जितना लिखा होगा, उतना ही मिलेगा। फिर उसके लिये अन्याय क्यों किया जाय? झूठ बोलनेसे रुपये ज्यादा नहीं मिल सकते, उलटे पाप लगता है। यह मनका भ्रम है, जो ऐसा प्रतीत होता है कि झूठ बोलनेसे रुपये मिलते हैं। इस बातपर आपका विश्वास न हो तो बात अलग है। यदि कदाचित् अन्यायसे रुपये पैदा भी होंगे तो उनसे सुख नहीं मिलेगा। अन्यायका, पापका फल दुःख-ही-दुःख होता है। इसलिये पापके द्वारा रुपये पैदा करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। आपको सब प्रकारसे विचार करके झूठसे बचना चाहिये। चिन्ता नहीं करनी चाहिये। निष्कामभावसे भगवान्‌के नाम-जप तथा सत्संगका अभ्यास बढ़ाना चाहिये। उससे आप-से-आप व्यवहार सुधर जाया करता है। इसलिये भजन-ध्यान और सत्संगकी चेष्टा ही विशेषरूपसे करनी चाहिये।

आपने लिखा कि दूकानके काममें फँस जानेसे भजन-ध्यान और सत्संग कम होता है, फलतः मुझ-जैसे मनुष्यका उद्धार होना बहुत कठिन है; सो इस प्रकारका भाव नहीं लाना चाहिये। निष्कामभावसे

किये जानेवाले भजन-सत्संगकी अपार महिमा है; उसके प्रतापसे, चाहे कोई कैसा भी पापी हो, उसका उद्धार होना बड़ी बात नहीं है। आप भजन-सत्संगको ही मुख्य मानिये। मुख्यतः भजन-सत्संग करते हुए दूकानका काम चाहे जितना कीजिये; फिर कोई हर्जकी बात नहीं है। भजनमें प्रेम होना चाहिये, फिर दूकानका काम करते हुए भी बहुत अच्छी तरहसे भजन हो सकता है।

[११]

भाईजी, अभीतक आपलोगोंको भगवान्‌की ओर लगनेके आनन्दका बहुत कम ज्ञान है; क्योंकि आपलोग संसारके मिथ्या आनन्दको आनन्द मान रहे हैं। जबतक मिथ्या मायाका जाल छिन्न-भिन्न नहीं हो जाता, जबतक मिथ्या मायाकी फाँसी कट नहीं जाती, तभीतक भोगोंका आनन्द सच्चा मालूम होता है और जबतक मिथ्या आनन्द सच्चा मालूम देगा तबतक उसके लोभमें फँसकर, विषय-भोगोंका सर्वनाशक विष खाकर चौरासी लाख बार जन्म-मरणके चक्करमें पड़ना पड़ेगा। इसलिये उसका उपाय करना चाहिये। संसारके मिथ्या विषय-भोग मृत्युकी भाँति तिरस्कार करनेयोग्य हैं। जिस प्रकार कोई बुद्धिमान् रोगी वैद्यकी बात मानकर मृत्युकारक कुपथ्यका त्याग कर देता है; उसके सामने मीठे-से-मीठा, सुस्वादु-से-सुस्वादु पदार्थ क्यों न हो, यदि वह यह जान लेता है कि उससे उसकी मृत्यु हो जायगी तो फिर उसका सेवन नहीं करता; उसी प्रकार यदि कोई बुद्धिमान् मनुष्य सांसारिक मिथ्या भोगोंको मृत्युस्वरूप समझकर त्याग देता है और किसी सद्‌गुरुकी दी हुई राम-नामकी बूटीका निरन्तर सेवन करता है तो उसका भवरोग तत्काल नष्ट हो जाता है और उसे भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है। फिर माया उसके पास नहीं जा सकती। जिस प्रकार सन्निपातके रोगीको भ्रम अर्थात् विपरीतभाव हो जाता है और वह मृत्युको प्राप्त होता है, उसी प्रकार संसारासक्त मनुष्योंको भी मोहरूपी सन्निपात हो रहा है, उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो रही है। इसलिये उन्हें किसी सद्वैद्यकी दी हुई संजीवनी बूटीका

निरन्तर सेवन करना चाहिये। जैसे भी हो सके, इसके लिये समय निकालना ही चाहिये। नहीं तो बीमारी दिन-दिन अधिक होती जा रही है। समय थोड़ा रह जायगा और बीमारी असाध्य हो जायगी तो फिर वैद्य भी जवाब दे देगा। ऐसे वैद्य विरले ही होते हैं जो बीमारी बहुत बढ़ जानेपर, मृत्युके अत्यन्त निकट आ जानेपर भी किसी रोगीको अपने जिम्मे लेते हैं। अतः यह समझकर जल्दी भजन-साधनके लिये चेष्टा करनी चाहिये। जन्म-मरणकी बीमारीको छोटा नहीं समझना चाहिये।

[१२]

भजन-साधन और सत्संग कम होता है, इसका क्या कारण है? इसका कारण भगवान्‌में प्रेम और विश्वासकी कमी ही समझी जा सकती है। निष्कामभावसे भजन-ध्यानका साधन तेज होनेपर संसारकी आसक्तिका नाश होकर सत्संगमें प्रेम हो सकता है और भगवान्‌को याद रखनेसे ही भगवान् याद रह सकते हैं। भगवान्‌के भजनका अभ्यास तीव्र होनेसे शरीरसहित सारा दृश्य संसार मिथ्या भासने लगता है और भगवान्‌के गुण-प्रभावादिकी बात बाँचने-सुननेसे प्रेमकी उत्पत्ति होकर भगवान्‌के दर्शन हो सकते हैं। फिर शरीरकी सुधि नहीं रहती। मैंपनका भाव भी मिट जाता है। बिना मैंपनके भावके शरीरसे चेष्टाएँ होती रहें, यही बहुत ऊँचे दरजेकी बात है। जबतक शरीरमें 'मैं' और 'मेरा' का भाव बना हुआ है, तभीतक उसमें आसक्ति है। भगवान्‌का भजन, ध्यान, सत्संग तथा माता-पिताकी सेवा करना ही उत्तम पुरुषका कर्तव्य है। भगवान्‌का स्वरूप उनके नामके ही अधीन है। शरीरमें तकलीफ रहनेके समय भगवत्स्मरणमें अधिक भूल नहीं होनी चाहिये। बल्कि मृत्युकी यादसे संसार और शरीरमें नश्वर-बुद्धि होकर भगवान्‌का स्मरण अधिक होना चाहिये। यदि अधिक भगवत्स्मरण न हो तो भगवान्‌में प्रेमकी त्रुटि और शरीरमें आसक्ति समझनी चाहिये। यदि दूसरे जन्ममें भी भगवान्‌के चरणोंमें नित्य-निरन्तर प्रेम बना रहे तो ध्यान होता रहे, परन्तु दूसरे जन्ममें इस जन्मके तीव्र अभ्याससे ही भगवान्‌में प्रेम हो सकता है, नहीं तो होना मुश्किल है।

इसलिये सत्संग और भजन-साधनका तीव्र अभ्यास करके इसी जन्ममें ही भगवान्‌को पानेकी चेष्टा करनी चाहिये। बिना सत्संग किये भजन-ध्यानका साधन होना कठिन है और सत्संग भी भजन-ध्यान तथा भगवान्‌की कृपासे ही प्राप्त होता है। अतः यदि इस जन्ममें भगवान्‌से मिलनेकी इच्छा हो तो सत्संग और भजन-ध्यानका साधन तेज करना चाहिये।

आप स्वयं विचार करके देखिये कि आप जैसा साधन कर रहे हैं, उससे भगवान् जल्दी मिल सकते हैं या नहीं। भजन करनेसे अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है; तब सभी प्रकारकी वासनाओंका नाश हो जाता है और संसार तथा शरीरमें आसक्ति भी मिट जाती है। इससे माता-पिताके साथ भी उनकी मर्जीके मुताबिक आनन्दपूर्वक बर्ताव हो सकता है, जिससे उनकी सेवा होती है। अतः माता-पिताकी सेवाके लिये भी भजनकी बड़ी जरूरत है। रुपये, स्त्री तथा शरीरमें प्रेम होनेके कारण भी माता-पिताकी सेवामें त्रुटि हो जाया करती है। भगवान्‌के भजन, ध्यान तथा सत्संगके तेज साधनसे अन्तःकरण शुद्ध हो जानेपर संसार एवं शरीर सब क्षणभंगुर भासने लगते हैं और तब माता-पिताकी रुचिके अनुसार कार्य करनेपर दुःख नहीं होता। माता-पिताके मनके माफिक काम करना ही उनकी परमसेवा करना है। इस दृश्य शरीर और संसारकी सत्ताका अभाव हो जानेपर फिर दूसरोंकी इच्छाके अनुसार कार्य करनेमें कोई आपत्ति नहीं रह जाती। चाहे जो कुछ हो, उसे तो आनन्द-ही-आनन्द रहता है। वस्तुतः जिनके मनमें इस दृश्य संसार और शरीरके प्रति सत्ताका भाव नहीं है, वे ही जीवन्मुक्त हैं, उन्हींका जन्म धन्यवादके योग्य है। किसी भी बातकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। चिन्ता ही भजन-ध्यानके साधनमें त्रुटि उत्पन्न करनेवाली है। जो निरन्तर प्रसन्न मनसे एवं निष्कामभावसे भगवान्‌के नामका जप करता है, उसको भजनके प्रतापसे जल्दी ही भगवान्‌के दर्शन हो जाते हैं। माता-पिता, दादा-दादी इत्यादि सभी बड़ोंकी सेवाके समान और कोई धर्म नहीं है। परन्तु इस धर्मका

सुचारुरूपसे पालन सत्संग तथा भजन-ध्यानके द्वारा हृदयका पाप नाश हो जानेपर ही होता है; अन्यथा पापके कारण इस धर्मका पालन करनेमें शर्म आती है।

[१३]

आपने लिखा कि तीव्र अभ्यासके द्वारा बहुत जल्द श्रीपरमात्माके नित्य सत्य बोधस्वरूपके ध्यानमें सदा एकरस स्थिति हो जाय, ऐसा उपाय लिखना चाहिये; सो ठीक है। आपने अपना जो अभ्यास लिखा है, वह बहुत ठीक है। ऐसा अभ्यास बढ़ाते रहनेसे आपकी इच्छाके अनुसार स्थिति हो सकती है।

उपदेश देनेवाला मैं कौन हूँ? फिर भी आपलोगोंके प्रेमके कारण कुछ शास्त्रकी बातें लिखी जाती हैं। परन्तु ध्यानका विषय जिस प्रकार समक्षमें समझाया जा सकता है, उस प्रकार पत्रमें नहीं समझाया जा सकता। फिर भी कुछ बातें नीचे लिखी जाती हैं—

(१) ध्यानके समय यदि कोई पुकारे और वह शब्द सुन पड़े तथा उत्तर देनेकी स्फुरणा हो तो कोई हर्जकी बात नहीं है। यदि शब्द सुनायी न पड़े और कोई स्फुरणा भी न हो तो और भी उत्तम बात है। ध्यानमें जो शब्द सुनायी देता है, वह सर्वव्यापी सत्-चित्-आनन्दके भीतर कल्पित-सा दिखायी देता है—यह भी कोई हर्जकी बात नहीं है। परन्तु उसमें जो अस्तित्व है, उसको परमात्माका स्वरूप समझना चाहिये। उसके अतिरिक्त और किसीका अस्तित्व नहीं मानना चाहिये। यह स्थिति उत्तम है। परन्तु इससे भी ऊँची श्रेणीकी स्थिति और है, जो नीचे लिखी जाती है—

(२) पत्र लिखते समय जो अचिन्त्य अवस्थाका ज्ञान रहता है, सो साधन-अवस्थामें रहता है। क्योंकि अचिन्त्य अवस्थामें भी जीवात्मा और परमात्माकी एकता नहीं है; एकताके समान स्थिति अवश्य है। एकता होनेके बाद तो फिर जीवात्माकी स्थिति शरीरमें हो ही नहीं सकती। वह तो पूर्ण ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है। उस अवस्थाको कोई कह नहीं सकता; वह अनिर्वचनीय पद है।

(३) एकमात्र सच्चिदानन्द ही है, मैं कुछ भी नहीं हूँ—इस प्रकार अपनेको भूलकर सच्चिदानन्दका ही होना मानना चाहिये। मैं तथा मेरा कुछ नहीं है, ऐसा समझनेका अभ्यास करनेसे अपनेमें भिन्नताका अभाव और सच्चिदानन्दमें एकीभाव हो सकता है। फिर एकान्तमें आँख मूँदकर बैठनेके बाद अन्तःकरणमें संसारका जो चित्र चिन्तनमें आवे, उसे अन्तःकरणसहित मिथ्या समझे अर्थात् उसका अभाव समझे। सबका लोप हो जानेके बाद अन्तःकरणमें जो अभाव करनेवाली वृत्ति है, उसका अचिन्त्य परमात्मामें एकीभाव हो जाय; वही परमात्माके स्वरूपमें स्थिति है। सर्व आकारका अभाव करते-करते अभाव करनेवाली वृत्तिके भी शान्त हो जानेपर जो बच रहता है, वही अचिन्त्य बोधस्वरूप आनन्दघन परमात्मा है। वही अमृत है।

(४) नित्य सत्य बोधस्वरूप आनन्दघनमें प्रगाढ़ स्थिति कब होगी, इसका उत्तर कोई मनुष्य नहीं दे सकता। क्योंकि यह बात भविष्यसे सम्बन्ध रखनेवाली होनेके कारण अनिश्चित है तथा साधनके अधीन है। केवल इतना ही कहा जा सकता है कि साधन तेज होनेपर उपर्युक्त स्थिति शीघ्र ही प्राप्त हो सकती है। '**तीव्रसंवेगानामासन्नः।**' (योग० १।२१)

(५) नित्य सत्य बोधस्वरूप आनन्दघनकी प्राप्ति चाहे जब हो, उसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। उसका ध्यान निरन्तर अवश्य रहना चाहिये। इसके लिये तीव्र अभ्यास ही उपाय है।

(६) साधक पुरुषको व्यवहारके समय अचिन्त्यके स्मरणकी स्थितिका स्मरण रहता है। यह भी एक प्रकारका ध्यान है। यह अवस्था अच्छी है, परन्तु बहुत ऊँची नहीं है। इसके बाद एक अवस्था और होती है। उसमें नित्य आनन्दघनमें ध्यानकी निरन्तर प्रगाढ़ स्थिति हो जाती है। वह स्थिति सदा एकरस रहती है। उसमें कमी-बेशी नहीं होती। फिर उसके बाद उससे भी बढ़कर परमात्माकी प्राप्तिकी अवस्था होती है, परन्तु वह कहनेमें नहीं आ सकती।

इस प्रकार ध्यानका विषय बहुत गहन है। पत्रमें संक्षेपमें ही लिखा गया है। यदि कभी समक्ष मिलना हो तो अच्छी तरह पूछ लेना चाहिये।

[१४]

आपने लिखा कि मन स्थिर नहीं रहता तथा भजन-सत्संग बहुत कम होता है, सो ऐसा क्यों होता है? सत्संगकी उत्कण्ठा होनेसे ही सत्संग मिलता है। आपने सत्संगका मर्म जाना नहीं। सत्संगका मर्म जान लेनेपर सत्संग छूट नहीं सकता। संसारमें सत्संगके समान कोई वस्तु नहीं है। जो सत्संगकी इच्छा करते हैं, उन्हें सत्संग मिलता है। इच्छा न रहनेपर प्रारब्धवश ही सत्संग मिल सकता है; परन्तु प्रारब्धके भरोसे काम चलना मुश्किल है। इसलिये इच्छा करके उसे प्राप्त करना चाहिये।

आप तीर्थोंमें गये, परन्तु वहाँ जाकर भी आपका मन स्थिर नहीं हुआ तो फिर तीर्थोंमें जाकर आपने क्या लाभ उठाया? तीर्थोंमें किसलिये जाया जाता है, इसपर विचार करना चाहिये। उत्तम पुरुष तो भगवत्प्राप्तिके लिये तीर्थोंमें जाया करते हैं, मध्यम पुरुष धर्मके लिये जाया करते हैं और उनसे भी नीची श्रेणीके लोग किसी कामनाकी पूर्तिके लिये जाते हैं। जो लोग भगवत्प्राप्तिके लिये तीर्थोंमें जाते हैं, उनकी दृष्टि भगवद्दर्शन प्राप्त करने, भगवद्भक्तोंद्वारा उपदेश सुनकर धारण करने और मन भगवान्‌में लगानेकी ओर रहती है। सो आपको भी ऐसा ही करना चाहिये। मन स्थिर करनेके लिये आपको भगवान्‌के नामका निरन्तर जप करना चाहिये। इससे आपका मन स्थिर हो सकता है।

[१५]

[श्रीजयदयालजीने मारवाड़ी अग्रवाल-समाजमें सगाई-विवाह आदिके अवसरपर आजकल जो फिजूलखर्ची और कुरीतियाँ बढ़ रही हैं, उसके सम्बन्धमें एक पत्रमें अपने विचार प्रकट किये हैं। यद्यपि ये विचार खास तौरपर मारवाड़ी अग्रवाल-समाजसे ही सम्बन्ध रखते हैं, परन्तु फिजूलखर्ची और सामाजिक कुरीतियाँ तो

प्रायः सभी समाजोंमें हैं। इसी भाँति अन्यान्य समाजोंके विचारशील समर्थ पुरुष भी अपने-अपने समाजोंमें फिजूलखर्ची और कुरीतियाँ रोकनेका प्रयत्न करें तो सबको लाभ हो सकता है। इसी अभिप्रायसे यह पत्र यहाँ प्रकाशित किया जाता है। —सम्पादक]

मारवाड़ी समाजकी सामाजिक फिजूलखर्ची और कुरीतियोंके सम्बन्धमें मेरे विचार ये हैं—

हमारे मारवाड़ी समाजमें तो वाग्दान (सगाई), विवाह और गौना आदि अवसरोंपर फिजूलखर्च और कुरीतियाँ इतनी बढ़ी हुई हैं कि यदि उन्हें ठीक-ठीक लिखा जाय तो एक पूरी पुस्तक बन जाय। यहाँ संक्षेपमें कुछ बातोंका दिग्दर्शन कराया जाता है।

सगाईके समय पहले मुद्देके नेगका केवल १.०० रु० दिया जाता था। आज उसकी जगह चोली, कब्जे और नगद मिलाकर बहुत साधारण गृहस्थके लगभग १००.०० रु० खर्च हो जाते हैं; धनवानोंका तो कोई ठिकाना ही नहीं है।

सगाईके बाद कचोलेके नेगमें लड़कीवाले करीब ११.०० रु० दिया करते थे। अब उसकी जगह चोली, कब्जे और नगद मिलाकर मामूली गृहस्थके भी १००.०० रु० से अधिक खर्च हो जाते हैं। सगाईके बाद सगोंकी मिलनीके ४.०० रु० देते थे, वे अभीतक ४.०० रु० ही कायम हैं, किन्तु उसके साथ एक फिजूल कुप्रथा यह चल पड़ी है कि लड़केके हाथमें लोग रुपये या गिन्नियाँ (मोहरें) देने लगे हैं। स्त्रियोंकी मिलनीके भी ५०.०० रु०, ६०.०० रु० देने लगे हैं। इस प्रकार सब मिलाकर लगभग १००.०० रु० हो जाते हैं; धनियोंका तो कोई ठिकाना ही नहीं है। उसके बाद 'हराभरा' का नेग होता है। इसमें पहले लोग १०.०० रु०, २०.०० रु० की सब्जी भेज दिया करते थे। समय पाकर २०.०० रु०, ३०.०० रु० नगद भी भेजे जाने लगे, पर आजकल तो इसकी मात्रा यहाँतक बढ़ गयी है कि साधारण स्थितिवाले लोगोंको भी १००.०० रु० की सब्जी और कम-से-कम २००.०० रु० करीब नगद भेजने पड़ते हैं। धनवान्‌की तो कोई सीमा ही नहीं है। उसके बाद आँगी-मेवेका नेग होता है। कुछ

समय पूर्व इस नेगमें दो पोशाक स्त्रियोंकी और दो पुरुषोंकी, कुछ मेवा, थोड़े खिलौने और लड्डू दिये जाते थे, किन्तु आजकल उनकी जगहपर साधारण स्थितिवालेको भी नगद और सामान मिलाकर ५००.०० रु०, ७००.०० रु० या १,०००.०० रु० तक खर्च करने पड़ते हैं; धनियोंकी तो कोई अवधि ही नहीं है।

इसके बाद कन्याके लिये जब गहने और पोशाक आती है, उस समय पहले ११.०० रु० या २१.०० रु० दिया करते थे, उसकी जगह अब चोली, कब्जे और नगद मिलाकर १००.०० रु० से अधिक तो साधारण स्थितिवालेके खर्च हो जाते हैं। यहाँतक तो सगाईके साथ सम्बन्ध रखनेवाले नेगोंकी बात हुई। अब विवाहके अवसरकी बात सुनिये। हमारे समाजमें आजकल प्राय: लड़कीवालेको अपने कुटुम्ब (३० से ४० मनुष्यों)-को साथ लेकर लड़कीका विवाह करनेके लिये लड़केवालेके यहाँ जाना पड़ता है। धनी लोग तो १००, २०० आदमी साथ ले जाते हैं। उन लोगोंके जाने-आने और खाने-पीनेमें बहुत अधिक धन व्यय होता है। उन लोगोंके पहुँचनेके बाद वरपक्षकी ओरसे पुन: कचोलेका नेग होता है, जिसमें किसी समय १०.०० रु०, ५.०० रु० दिये जाते थे, पर आज मामूली गृहस्थके भी कब्जे, चोली और नगद मिलाकर लगभग १००.०० रु० खर्च हो जाते हैं। उसके बाद वरपक्षकी स्त्रियाँ कन्यापक्षकी स्त्रियोंको चाब देने जाती हैं। चाबके नेगमें पहले एक पोशाक (स्त्रियोंकी) और ११.०० रु० या १५.०० रु० दिये जाते थे, पर आज उसके स्थानपर पोशाकके सिवा चोली, कब्जे, नगद आदि मिलाकर १५०.०० रु० करीब खर्च हो जाते हैं; धनियोंका तो कोई ठिकाना ही नहीं है। इसके बाद कुँआरीमिठाई (झोला भरना) होती है। इस नेगमें पहले तो वरको दो पोशाकें और कुछ मेवा-मिठाई दी जाती थी, पर अब इसमें मेवा-मिठाई, पोशाक, नगद आदि मिलाकर एक साधारण श्रेणीके गृहस्थके १५०.०० रु०, २००.०० रु० करीब खर्च हो जाते हैं। इसके बाद हाँस (स्त्रियोंका मिलन)-का नेग होता है। इस काममें पहले २१.०० रु० करीब दिये जाते थे, पर आज एक साधारण गृहस्थको १००.०० रु०, १२५.०० रु० नगद

स्त्रियोंको और वरके हाथमें एक गिन्नी देनी पड़ती है। इसके अनन्तर कोरथका नेग दिया जाता है जिसमें १०१.०० रु० अधिक-से-अधिक देनेकी पुरानी प्रथा अभीतक कायम है। इसके बाद दात (छाक)-का नेग होता है, जिसमें किसी समय स्त्रियोंकी ९ पोशाकें दी जाती थीं, आज पोशाक और नगद मिलाकर साधारण गृहस्थको भी ४५०.०० रु०, ५००.०० रु० देने पड़ते हैं। इसके बाद सिरगुंथीके समय गाँठका नेग होता है, जिसमें पहले दो आँगी और २.०० रु० नगद दिये जाते थे, आजकल कब्जे, चोली और नगद मिलाकर करीब ५०.०० रु० खर्च होते हैं; धनवानोंका तो कोई ठिकाना ही नहीं है। इसके अनन्तर पहरावनीका नेग होता है, उसमें पहले गहने, कपड़े, बरतन, नगद आदि साधारणरूपसे दिये जाते थे, पर आजकल उसके स्थानपर एक साधारण श्रेणीके गृहस्थके लगभग १,५००.०० रु०, २००००.०० रु० खर्च हो जाते हैं। इन सबके अतिरिक्त बारातके स्वागत, सत्कार और खिलाने-पिलाने आदिमें भी सैकड़ों, हजारों रुपये व्यय करने पड़ते हैं। यहाँतक तो विवाहके सम्बन्धसे होनेवाले खर्चकी बात हुई; अब गौने (मुकलावे)-का नम्बर आता है। पहले लड़कीके लिये कुछ गहने, कपड़े, खिलौने आदि सामान, उसकी सासके लिये कपड़े और २०.०० रु०, ३०.०० रु०, ५०.०० रु० नगद दिये जाते थे; आज उसके स्थानपर हजारों रुपयोंके गहने, कपड़े और नगद दिये जाते हैं। यह खर्च विवाहकी पूरी रकमका लगभग आधा हो चला है। इसके बाद दूसरका दिया जाता है, जो गौनेका लगभग तिहाई होता है। इसके बाद लड़कीके गर्भवती होनेपर 'साध' नामक नेग दिया जाता है, इसमें पहले जहाँ लड़कीके लिये साधारण पोशाक भेजी जाती थी, वहाँ अब मामूली आदमीके भी कपड़ा नगद मिलाकर ७५.०० रु०, १००.०० रु० खर्च हो जाते हैं। यदि लड़का पैदा होता है तो खीचड़ीका नेग और लड़की पैदा होती है तो तालवेका नेग होता है। खीचड़ीके नेगमें करीब १००.०० रु० और तालवेमें ५०.०० रु०, ६०.०० रु० खर्च होते थे, अब गहने, कपड़े, नगद मिलाकर एक साधारण आदमी भी खीचड़ीमें ३००.०० रु० और तालवेमें १५०.०० रु० खर्च करता है। फिर लड़की

जब बालक साथ लेकर नैहरमें आती है तो उसे विदा करते समय पहले गहने, कपड़े मिलाकर करीब १५०.०० रु० खर्च होते थे, अब एक साधारण श्रेणीका गृहस्थ भी ४००.०० रु०, ५००.०० रु० खर्च करता है। इसे छूछकका नेग कहते हैं। इसके अनन्तर ससुरालमें जानेपर बच्चेका 'परोजन' नामक नेग होता है। इस काममें भी पहले १००.०० रु०, १५०.०० रु० करीब खर्च होते थे, जिनके स्थानपर आज कन्याके पिताके ४००.०० रु०, ५००.०० रु० खर्च हो जाते हैं; धनियोंके यहाँ तो कोई ठिकाना ही नहीं है। यह हिसाब एक लड़कीकी सगाईसे लेकर उसके बच्चा पैदा होनेतकका है। बादका हिसाब कहाँतक बतलाया जाय! जब एक लड़कीके निमित्तसे इतना खर्च होता है तो फिर किसी साधारण श्रेणीके गृहस्थके चार-पाँच लड़कियाँ हों तो उसकी क्या दशा होगी?

वरपक्षके इच्छानुसार दहेज देने और उनके आदर-सत्कार करनेमें साधारण श्रेणीके भाइयोंका तो नाकों दम आ जाता है। बेचारे गरीब भाई इतने दुःखी हो जाते हैं कि उन्हें कोई उपाय ही नहीं दीख पड़ता। वे लोग किसी प्रकार भी ऋण लेकर या सहायतारूपमें लोगोंसे धन प्राप्त करके बड़े कष्टके साथ काम चलाते हैं। वर्तमान बेकारीके समयमें कहीं-कहीं तो उस ऋणको अदा करनेमें बहुत-सा जीवन बरबाद हो जाता है। कहीं-कहीं ऐसा भी होता है कि लड़कियाँ माँ-बापको इस प्रकार कष्टमें देखकर अपनेको उसका कारण समझकर आत्महत्यातक कर बैठती हैं। हमलोग इस दुःखका कहाँतक अनुमान करें? इस दुःखके कारण कहीं-कहीं तो लोग अपनी लड़कीको रुपया लेकर किसी वृद्धके हाथ बेंच डालते हैं; और इसी कारणसे आज समाजमें जब किसीके यहाँ लड़की बीमार पड़ जाती है तो उसके इलाजका उचित प्रबन्ध भी नहीं करते और मर जानेपर ऊपरसे शोकचिह्न दिखलाते हुए भी मनमें दुःखी नहीं होते। यदि इस रोगकी उचित औषध न की गयी तो आगे जाकर माता-पिता अपनी लड़कीकी हत्या करने लग जायँ तो कोई असम्भव बात न होगी। इस प्रकार कन्याएँ यदि मरने लगेंगी तो धर्म और जातिका विनाश होना सम्भव है। इसलिये मेरी वरपक्षके लोगोंसे बहुत ही नम्रता और

आग्रहपूर्वक प्रार्थना है कि वे लोग सगाई-विवाहमें कन्यापक्षवालोंसे उनकी शक्तिको देखते हुए कम-से-कम दहेज लेनेकी कृपा करें। अधिक लेनेके लिये उनपर संकेतसे, हाव-भाव या अन्य किसी प्रकारसे भी दबाव न देकर वे जितना इच्छापूर्वक देना चाहते हों, उससे भी जहाँतक हो सके कम-से-कम लेनेकी चेष्टा करें तथा बारातमें कम-से-कम संख्यामें लोगोंको ले जायँ। इसके अधिक विस्तारसे फिजूलखर्च बढ़ता है तथा अनेक प्रकारकी नयी-नयी कुरीतियाँ बढ़ती हैं। बारातके स्वागतके लिये कन्यापक्षवालोंपर अनुचित दबाव न दिया जाय, इससे गरीब भाइयोंको बहुत कष्ट सहन करना पड़ता है। कुछ दिनों पूर्वकी एक घटना मेरे देखनेमें आयी। एक विवाहमें बारातके जुलूसके स्वागतमें लड़कीवालेपर दबाव डालकर पाश्चात्य ढंगसे टेबुल, कुर्सी आदिपर बैठाकर खिलाने-पिलानेका प्रबन्ध करवाया गया, जो कि मारवाड़ी-समाजमें एक प्रकारसे कलंकरूप है। इस प्रकारकी अनावश्यक कुरीतिके चलानेसे समाजमें व्यर्थ खर्च, परिश्रमकी वृद्धि और जाति एवं धर्मकी हानि होती है। अतएव इस कुरीतिका घोर विरोध करना चाहिये।

समाजकी वर्तमान अवस्था देखते हुए इस बेहद फिजूलखर्चीकी वृद्धिमें कन्यापक्षवालेका कोई विशेष दोष नहीं है। यदि वह इस प्रकार न करे तो योग्य घर-वर मिलना कठिन हो जाता है; इसलिये उसे बाध्य होकर बिना इच्छा भी खर्च करना पड़ता है। पर इसका परिणाम दिन-प्रतिदिन बड़ा ही भयंकर हो रहा है। पता नहीं, भविष्यमें कहाँतक पतन होगा। अपना और समाजका हित चाहनेवाले सज्जनोंको इसपर विशेष ध्यान देना चाहिये। जबतक वरपक्षवाले लोग इस अनुचित स्वार्थवृत्तिका त्याग न करेंगे, तबतक इसके सुधारका कोई उपाय ध्यानमें नहीं आता।

कन्यापक्षवालोंसे भी मेरी सविनय प्रार्थना है कि वे कन्याके लिये अधिक गहना घलवानेका और बढ़िया तथा ज्यादा तीलें लेनेका वरपक्ष-वालोंपर दबाव तो दें ही नहीं, किन्तु इच्छा भी न रखें और कमके लिये आग्रह करें।

विवाह होनेके बाद मुकलावेसे लेकर छूछकतक जो दहेज दिया

जाता है, इसमें अधिकांश लड़की और उसकी माताके आग्रहसे ही अधिक खर्च किया जाता है, इसलिये स्त्रियोंको समझाकर इस काममें खर्च कम करना चाहिये।

वरपक्षकी बहिन-बेटियोंसे भी मेरी प्रार्थना है कि कब्जा, चोली आदिकी इस बढ़ी हुई कुप्रथाको हटानेके लिये वे लोग भी इनको कन्यापक्षवालोंसे लेनेकी इच्छा न करें। इनके बदलेमें वरपक्षवालोंसे भी कुछ लेनेकी इच्छा न करें, बल्कि देनेपर भी इनकार कर दें और नेगोंमें भी त्यागवृत्ति ही रखें। त्यागमें ही शोभा और गौरव है; त्यागसे ही शान्ति मिलती है।

धनवान् भाइयोंसे मेरी विशेष प्रार्थना है कि वे साधारण और मध्यम श्रेणीके भाइयोंपर दया करके समाजके सम्मुख त्यागपूर्ण आदर्श उपस्थित करें। पुराने जमानेके अनुसार नेग लेनेकी प्रथा जारी कर सकें तो बहुत ही सराहनीय और आदर्श काम होगा। ऐसा न कर सकें तो अधिक-से-अधिक निम्नलिखित रूपमें नेग लेनेकी कृपा करें।

वाग्दान (सगाई)-के समय मुद्देका केवल १.०० रु० ही हो। यदि कोई सुहागिनी मुद्दा लेने जाय तो अधिक-से-अधिक २.०० रु० और दो चोली-कब्जातक दे सकते हैं। कचोलेके नेगके ११.०० रु० से ज्यादा न हों। मिलनीके केवल पुरुषोंके ही ४.०० रु० हों, लड़केके हाथमें गिन्नी या रुपया न स्वीकार किया जाय। हरे-भरेके सब्जीसहित १०१.०० रु० से अधिक न लिये जायँ। लड़कीको गहना भेजनेके नेगके २१.०० रु० से अधिक न लिये जायँ। आँगी-मेवा बिलकुल न लिया जाय। सगाईके सब नेगोंको मिलाकर इस प्रकार कुल १४०.०० रु० से अधिक न लिये जायँ। चोली, कब्जे बिलकुल न लिये जायँ। विवाहके अवसरपर कचोला दिखलाना, चाब देना और गाँठोंके समयके नेगको कतई बंद कर देना चाहिये। कुँआरी-मिठाईमें कपड़े, खिलौने, मेवा, मिठाई और नगद—सब मिलाकर १०१.०० रु० से ज्यादा न लिया जाय या यह नेग एकदम बंद कर दिया जाय। हाँसके समय स्त्रियोंकी मिलनीके कुल ५१.०० रु० से अधिक न हों। लड़केके हाथमें रुपये और गिन्नी न ली जाय। कोरथकी प्रथामें परिवर्तनकी आवश्यकता नहीं है। दाँतकी तीलोंमें कपड़ा और नगद

मिलाकर ३००.०० रु० से अधिक न लिया जाय या केवल दो तीलें ही ली जायँ, रुपये नहीं। पहरावनीमें कन्यापक्षवाला प्रसन्नचित्तसे आग्रहपूर्वक जितना देना चाहे, उससे कम ही लेना चाहिये। जितना त्याग किया जाय, उत्तम है।

मुकलावेमें विवाहके खर्चकी अपेक्षा एक चौथाईसे अधिक देने-लेनेकी चेष्टा और इच्छा न रखनी चाहिये। दूसरका और साधके नेग अनावश्यक समझकर इनको बंद कर देना चाहिये। 'परोजन' का नेग अशास्त्रीय और अनावश्यक है, इसमें दोनों तरफसे ही व्यर्थ खर्च होता है, अतः हो सके तो इसे भी उठा दिया जाय। खीचड़ी, तालुआ और छूछकके नेगोंमें भी खर्च कम करनेकी चेष्टा रखनी चाहिये।

सगाई, विवाह, मुकलावा आदिके अवसरपर जो दहेजका दिखलावा किया जाता है, यह भी एक बड़ी भारी कुरीति है। इससे लोगोंमें मान, प्रतिष्ठाके लिये व्यर्थ खर्च करनेकी भावना बढ़ती है। कहीं-कहीं तो यहाँतक पाप होता है कि जितना देते हैं, उससे अधिक एवं दुबारा दिखलाया जाता है। कहीं-कहीं तो लड़कीसे रुपये लेकर भी उन्हें अपनी ओरसे दहेजके रूपमें दिखाया जाता है, अतएव इस प्रथाका भी सर्वथा त्याग कर देना चाहिये।

विवाहमें होनेवाली कुरीतियोंको भी दूर करनेके लिये चेष्टा करनी चाहिये; जैसे सीठने गाना, सिनेमा-नाटक करवाना, फुलवाड़ी निकालना, आतिशबाजी करना, अश्लील हँसी-मजाक करना, एकान्तमें वरको बुलाकर उससे स्त्रियोंका अश्लील बातें करना आदि। ब्रह्मचर्यके लिये महान् हानिकर समझकर फेरपाटेका नेग भी बंद कर देना चाहिये।

नेगके नामपर होनेवाली कुरीतियोंको भी हानिकर समझकर अवश्यमेव त्याग देना चाहिये। जैसे चाक पूजना, काजल घालना, टूँटिया करना, जुआ खेलना, बिनौरी निकालना, सिरगूँथीके समय छक्कड़ लगाना आदि।

इनसे धन, धर्म और ब्रह्मचर्यकी हानि तथा समाजका अधःपतन होता है। अतएव अपना और समाजका हित चाहनेवाले भाइयोंको इस फिजूल खर्च और कुरीतियोंके त्यागके लिये विशेष चेष्टा करनी चाहिये।

[१६]

सप्रेम यथायोग्य। आपका पत्र यथासमय मिल गया था। उत्तर देनेमें विलम्ब हो गया, इसके लिये किसी प्रकारका विचार नहीं करना चाहिये। आपने लिखा कि आपकी स्मृति कई बार हुआ करती है, सो स्मृति तो भगवान्‌की ही रखनी चाहिये। भगवान्‌की स्मृतिसे ही मनुष्यका कल्याण हो सकता है। मनुष्यकी स्मृतिसे विशेष क्या लाभ है?

ऋषिकेशके मेरे व्यवहारसे आपको प्रसन्नता हुई, यह आपके प्रेमकी बात है, किन्तु ग्वालबालोंके प्रसंगको लेकर मेरी भगवान्‌से तुलना की, सो इस प्रकारकी बात नहीं लिखनी चाहिये। मैं तो एक साधारण मनुष्य हूँ, किसी भी मनुष्यके साथ भगवान्‌की तुलना करना ठीक नहीं तथा आपने लिखा कि श्रीतुलसीदासजी तो भक्तोंको भगवान्‌से भी बढ़कर बतलाते हैं, सो ठीक है। श्रीतुलसीदासजी महाराजने विनोदसे ***'राम ते अधिक राम कर दासा'*** यह बात जिन भक्तोंको लक्ष्य करके कही है, उनके साथ मेरी तुलना करना उचित नहीं है। आपने लिखा कि मेरी श्रद्धाकी ही कमी है, सो ठीक ही है; मैं तो ऐसी श्रद्धाके लायक हूँ भी नहीं, इस न्यायसे श्रद्धा कम होनी उचित ही है।

आपने लिखा कि ऐसी बातें लिखें, जिनसे भगवान् प्रकट हो जायँ; किन्तु जिन बातोंके लिखनेसे भगवान् प्रकट हो जायँ, वैसी कोई बात लिखनेके लिये न तो मेरे हृदयमें प्रकट ही होती है और न मैं इसका पात्र ही हूँ; इसलिये ऐसी बातें कैसे लिखूँ? आपके प्रश्नोंके उत्तर इस प्रकार हैं—

प्र०—भगवान्‌की निरन्तर स्मृति बनी रहे, इसका मुख्य उपाय तथा इसके सहायक और बाधक क्या-क्या हैं? लिखनेकी कृपा करें।

उ०—भगवान्‌की निरन्तर स्मृतिके लिये भगवान्‌में अनन्यप्रेम ही मुख्य उपाय है। इसमें वैराग्य, सत्संग, जप और स्वाध्याय आदि तो सहायक हैं और विषयोंका तथा विषयी, पामर और नास्तिक पुरुषोंका संग एवं विषयासक्ति, अभिमान, संशय, भ्रम और अज्ञान आदि इसके

बाधक हैं। चिट्ठीमें विस्तारसहित लिखनेमें बहुत समय लग सकता है और पूरी बात लिखी भी नहीं जा सकती; अत: कभी मिलना हो तो इस विषयमें बातचीत कर सकते हैं।

प्र०—निरन्तर सत्संग होनेका क्या उपाय है और सर्वोत्तम सत्संग किसे कहते हैं?

उ०—पूर्वकृत पुण्योंके प्रभावसे एवं ईश्वर और महात्माओंकी कृपासे तथा श्रद्धा और प्रेमके होनेसे निरन्तर सत्संग हो सकता है। आचरणमें लानेके उद्देश्यसे श्रद्धा और प्रेमपूर्वक महापुरुषोंका संग करना तथा उनका पुन:-पुन: मनसे मनन करके उत्साहपूर्वक आचरणमें लाना सर्वोत्तम सत्संग है।

प्र०—गीताप्रेसके कामको कोई भगवान्‌का काम समझकर करना चाहे तो वह कैसे करे?

उ०—इसका उद्देश्य केवल अध्यात्मविषयक साहित्यके प्रचारद्वारा जनतामें प्रेम, भक्ति, ज्ञान तथा सदाचारका विस्तार करना है। इसकी आमदनी भी धर्म-कार्य एवं भगवान्‌के तत्त्व, गुण, प्रभाव, नाम, रूप, लीला, रहस्य आदिके प्रचारमें ही व्यय की जाती है। इसमें किसीका व्यक्तिगत स्वार्थ न होनेसे इसको भगवान्‌का काम समझकर किया जा सकता है।

प्र०—क्या भगवान्‌का ध्यान और काम दोनों साथ-साथ हो सकते हैं?

उ०—हाँ, यदि भगवान्‌में पूर्ण श्रद्धा और प्रेम हो तो निरन्तर भगवान्‌का ध्यान रहते हुए ही संसारके सब काम हो सकते हैं।

प्र०—प्रतिकूल पदार्थोंकी प्राप्तिमें द्वेष और अनुकूल पदार्थोंकी प्राप्तिमें राग होता है, इनका विनाश होकर समता कैसे हो?

उ०—प्रत्येक क्रिया, पदार्थ और परिस्थितिकी प्राप्तिमें पद-पदपर भगवान्‌की अपरिमित दयाका अनुभव करनेसे भगवान्‌में श्रद्धा-विश्वास होकर प्रेम होनेपर तथा यह माननेसे कि अनिच्छा या परेच्छासे जो कुछ भी होता है वह भगवान्‌का ही किया हुआ मेरे हितके लिये मंगलमय विधान है, भगवान् मेरे सुहृद् हैं, ऐसा विश्वास हो जानेपर

किसी भी प्रतिकूलताकी प्राप्तिमें किंचित् भी द्वेषबुद्धि नहीं रह सकती। तथा मान, बड़ाई, पूजा, प्रतिष्ठा, ऐश्वर्य आदिमें मेरा बड़ा भारी अहित है, इसलिये इनको स्वीकार करनेमें भगवान्की सम्मति नहीं है, यह जान लेनेपर भगवान्की प्रसन्नता चाहनेवालेकी मान, बड़ाई, पूजा-प्रतिष्ठा, ऐश्वर्य आदि अनुकूलताकी प्राप्तिमें किंचित् भी रागबुद्धि नहीं रह सकती। इस प्रकार राग-द्वेषका नाश होकर समताकी प्राप्ति हो जाती है।

प्र०—जिसे भगवान्के एक बार दर्शन हो जाते हैं, उसे फिर जब वह चाहे तब दर्शन हो सकते हैं या नहीं?

उ०—भावसे तो जब चाहे तभी दर्शन हो सकते हैं, किन्तु स्वरूपसे प्रत्यक्ष दर्शन तो तभी हो सकते हैं, जब कि भक्तने इस प्रकारका वर प्राप्त कर लिया हो; नहीं तो दर्शन देना भगवान्की इच्छापर निर्भर है।

प्र०—भगवान्का भजन करना ही सर्वोत्तम है, ऐसा निश्चय किस प्रकार हो सकता है?

उ०—भगवान् क्षर-अक्षररूप जड-चेतन, स्थावर-जंगम समस्त संसारसे श्रेष्ठ हैं, इस बातका महात्माओंकी कृपासे तात्त्विक ज्ञान हो जानेपर तथा भगवान्के गुण, प्रभाव जानकर उनका भजन करनेसे 'उनका भजन करना सर्वोत्तम है', ऐसा विश्वास हो सकता है। इसका विशेष तात्पर्य समझनेके लिये गीता-तत्त्वांक अध्याय १५ श्लोक १६ से १९ तकका अर्थ देख सकते हैं।

प्र०—जबतक कोई किंचित् भी असत्य बोलता है या छिपकर शास्त्रनिषिद्ध कोई भी कार्य करता है तो ऐसी परिस्थितिमें वह अपनेको नास्तिक समझे या आस्तिक?

उ०—ऐसी स्थितिमें न तो उसे पूरा आस्तिक ही कहा जा सकता है और न नास्तिक ही; क्योंकि नास्तिक तो इसलिये नहीं कहा जा सकता कि वह जो कुछ छिपाता है, उसे वह पाप समझता है; किंतु वह छिपकर पाप करता है, इसलिये पूरा आस्तिक भी नहीं कहा जा सकता। अत: उसे मध्यम श्रेणीका समझना चाहिये।

प्र०—यदि आप मुझे भगवान्‌के अस्तित्वमें और उनके अनन्त गुणोंमेंसे किसी भी एक गुणमें विश्वास करा दें तो मैं भगवान्‌को शीघ्र ही प्राप्त कर सकता हूँ; उनके लिये मर-मिटनेको प्रस्तुत हो जाऊँ; ऐसा प्रतीत होता है।

उ०—आपका लिखना बहुत ठीक है, विश्वास हो जानेपर ऐसा हो जाना बहुत सम्भव है; किन्तु यह मेरे सामर्थ्यके बाहरकी बात है, अत: इसके लिये भगवान्‌की शरण होकर, एकान्तमें आर्तस्वरसे गद्‌गद होकर करुणभावसे उनसे प्रार्थना करनी चाहिये। भगवान् ऐसा विश्वास करा सकते हैं।

प्र०—मैं तो प्रेमी नहीं हूँ, पर भगवान् तो प्रेमी हैं। जिसमें प्रेम होता है, वह मिले बिना कैसे रह सकता है? इस दृष्टिसे प्रेमी प्रभु मुझे दर्शन दिये बिना कैसे रह रहे हैं?

उ०—निश्चय ही प्रभु बड़े प्रेमी हैं, इसलिये जो प्रेमके पात्र हैं तथा प्रभुसे प्रेम करनेकी तीव्र लालसावाले हैं, उनसे मिलनेके लिये प्रभु बाध्य हैं। प्रेम न करनेवालोंसे भी यदि मिलते तो फिर सभीसे मिलना चाहिये था, किन्तु ऐसा विधान नहीं है। यही कहा है—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

(गीता ४। ११)

अतएव यदि आपका प्रभुमें प्रेम नहीं है तो आपका यह दावा नहीं चल सकता।

भगवान् प्रेमी हैं, इस बातका दृढ़ निश्चय हो जानेपर मनुष्य उनसे मिले बिना रह भी कैसे सकता है? अत: यही मानना पड़ेगा कि यह केवल कथनमात्र ही है कि भगवान् प्रेमी हैं, वास्तवमें हमारे विश्वासकी ही कमी है।

प्र०—भगवान्‌के दर्शन होनेमें विलम्ब क्यों हो रहा है?

उ०—श्रद्धा और प्रेमकी कमीके कारण साधनमें शिथिलता रहनेसे ही भगवान्‌के दर्शन होनेमें विलम्ब हो रहा है।

प्र०—प्रभुके जल्दी-से-जल्दी दर्शन होनेका उपाय क्या है?

उ०—भगवान्‌के नामका जप, गुण-प्रभावसहित स्वरूपका ध्यान और लीलाओंका चिन्तन (मनन), सत्पुरुषोंका संग, सबको भगवान् समझकर उनकी निष्कामभावसे सेवा करना तथा भगवान्‌से मिलनेकी तीव्रतम इच्छा—यही सबसे सरल और जल्दी-से-जल्दी भगवान्‌के दर्शन होनेका उपाय है।

प्र०—आप मेरे मनकी बात जानते हैं, मुझे ऐसा विश्वास करा दीजिये, ऐसा विश्वास हो जानेपर निषिद्धाचरण छूट सकते हैं।

उ०—मैं तो किसीके मनकी बात नहीं जानता, फिर इस प्रकारका विश्वास कैसे करवा सकता हूँ। सबके मनकी बात तो केवल अन्तर्यामी प्रभु ही जानते हैं, अत: इस बातके विश्वासके लिये उन्हींसे प्रार्थना करनी चाहिये; इस प्रकारका विश्वास होनेपर निषिद्धाचरण सर्वथा बंद हो सकते हैं।

प्र०—क्या केवल नाम-जप करनेसे ही भगवान्‌का ध्यान हो सकता है? यदि हो सकता है तो कितने नाम-जपसे?

उ०—नाम-जप करते-करते ध्यान हो सकता है; किन्तु इसके लिये संख्याका नियम नहीं बतलाया जा सकता; क्योंकि यह सब मनुष्यके पूर्वसंस्कार, प्रकृति तथा श्रद्धा-प्रेमपर निर्भर है। यदि पाप अधिक हैं, स्वभाव खराब है और श्रद्धा-प्रेमकी कमी है तो ध्यान विलम्बसे होगा और पाप कम हैं, स्वभाव भी अच्छा है तथा श्रद्धा-प्रेम भी पर्याप्त है तो परमात्माके स्वरूपमें मन और बुद्धि शीघ्र ही स्थिर होकर ध्यान हो सकता है।

प्र०—वाणी, भोजन और शयनका संयम किस प्रकार हो सकता है?

उ०—अकारण अधिक बोलना प्रमाद है। अधिक भोजन और शयनसे निद्रा, आलस्यकी वृद्धि होती है। निद्रा, आलस्य और प्रमाद—ये तीनों ही तमोगुणके कार्य होनेसे पतन करनेवाले हैं—'**अधो गच्छन्ति तामसाः**' (गीता १४। १८) इस प्रकार निश्चय होनेपर आवश्यकतासे अधिक खाना, सोना और बोलना कम हो सकता है।

प्र०—निरन्तर ध्यानकी मस्ती किस प्रकार बनी रह सकती है?

उ०—संसारमें वैराग्य, सत्पुरुषोंका संग और श्रद्धा-प्रेमपूर्वक नामका जप करनेसे निरन्तर ध्यानकी मस्ती बनी रह सकती है!

[१७]

सप्रेम राम-राम। आपका पत्र मिला। समाचार ज्ञात हुए। आपने लिखा कि 'आजकल लोग कहा करते हैं कि मनुष्य अपने भाग्यका निर्माता स्वयं है' इसका हमलोग यह अर्थ भी ले सकते हैं कि हम जैसे कर्म करेंगे, फल भी वैसा ही मिलेगा। दूसरे, आधुनिक समझके लोग यह भी अनुभव करते हैं कि 'सब कुछ मनुष्यके पौरुषपर ही निर्भर है।' इनमें कर्मोंके अनुसार फल मिलनेकी बात तो ठीक है; परन्तु सब कुछ मनुष्यके पौरुषपर ही निर्भर है, यह सिद्धान्त केवल धर्म और मोक्षके विषयमें ही मानना चाहिये। अर्थ (धन) और काम (भोग)-की प्राप्तिके विषयमें नहीं, क्योंकि ये कर्मोंके फल होनेके कारण इनमें—प्रारब्धकी ही प्रधानता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इनमें अर्थ और कामके विषयमें प्रारब्धकी प्रधानता समझनी चाहिये; और धर्म तथा मोक्षके विषयमें पुरुषार्थकी; क्योंकि ये कर्ताके साधनपर ही निर्भर हैं। इस प्रकार समझकर अपनी समस्या सुलझानी चाहिये और भारी-से-भारी विपत्तिमें भी धर्म (सत्य और न्याय)-का त्याग कभी नहीं करना चाहिये। महाभारतके स्वर्गारोहणपर्वमें कहा है—

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्
धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः।
नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः॥

(५।६३)

अर्थात् 'मनुष्यको किसी भी समय कामसे, भयसे, लोभसे या जीवन-रक्षाके लिये भी धर्मका त्याग नहीं करना चाहिये। क्योंकि धर्म

नित्य है और सुख-दुःख अनित्य हैं तथा जीव नित्य है और उसका हेतु (जीविका) अनित्य है।'

आपके घरकी परिस्थितिका हाल पढ़कर विचार हुआ, पर जब मनुष्यपर संकट पड़ता है तो उसे स्वयं ही भोगना पड़ता है। युधिष्ठिर, नल आदि जैसे अच्छे-अच्छे पुरुषोंपर भी प्रारब्धसे संकट आये थे। प्रारब्धसे प्राप्त इस संकटको भगवान्‌का विधान समझकर सहर्ष सहन करना चाहिये। इससे स्वार्थ और परमार्थ दोनोंमें लाभ है।

आपने लिखा कि अन्य मतावलम्बी ईसाई अथवा यवन मेरी विपत्तिसे अनुचित लाभ उठानेका प्रयत्न करते हैं। पापी मन कभी-कभी विचलित-सा हो जाता है और मैं सोचने लग जाता हूँ कि 'जिस जातिमें शिक्षाका मान नहीं, भाईका सम्मान नहीं, गरीबोंपर दया नहीं और पारस्परिक सहायताका नाम नहीं उसमें व्यर्थ घुटकर मरनेसे क्या लाभ?' सो इस विषयपर आपको गहरा विचार करना चाहिये। मुसलमानोंमें हिंदू-जातिसे अधिक सम्मान-सत्कार और दया मिलनेकी सम्भावना तो भ्रममात्र है। उनमें तो प्रायः अनादर और अत्याचारकी मात्रा ही अधिक देखी जाती है। इसलिये सांसारिक संकट प्राप्त होनेपर भी आपको प्रलोभनोंमें नहीं पड़ना चाहिये। उनसे सांसारिक स्वार्थ सिद्ध होनेकी आशा भी कभी नहीं करनी चाहिये। पारमार्थिक हानि तो है ही। ईसाई आरम्भमें तो अवश्य ही अच्छा व्यवहार करते हैं, परन्तु यह भी उन लोगोंकी एक नीतिमात्र है। आरम्भमें तो वे खूब प्रेम करते हैं, प्रलोभन देते हैं; परन्तु पीछे उसे विशेष मदद नहीं करते। थोड़ी देरके लिये मान भी लें कि उनके यहाँ सांसारिक सुख मिलेंगे, तो भी क्या अपने धर्मको छोड़ना चाहिये? मेरी समझसे तो प्राण देकर भी अपने धर्मकी रक्षा करनी चाहिये। किसी दूसरे भाईकी भी वृत्ति यदि इस ओर जाय तो आप-जैसे पढ़े-लिखे पुरुषको उसे भी समझा-बुझाकर उस तरफ न जानेके लिये ही उत्साहित करना चाहिये। धर्म ऐसी वस्तु नहीं है, जिसे संकटके डरसे छोड़ दिया जाय। धर्मरक्षाकी परीक्षा तो संकटमें ही हुआ करती है।

आपने लिखा है कि 'जीते रहकर कलंक लगानेकी अपेक्षा मृत्यु क्या

बुरी है? परन्तु यदि इन आपत्तियोंसे ऊबकर माता, पिता और अपने आश्रितजनोंको छोड़कर आत्महत्या कर ली जाय तो यह घोर पाप लगेगा।' आपका यह लिखना ठीक है; धर्मसे विचलित न होकर मृत्यु हो जानेको अच्छा समझना तो सराहनीय है। किन्तु आप-जैसे पढ़े-लिखे और बुद्धिमान् पुरुषको संकट पड़नेपर आत्महत्याका विचार ही क्यों करना चाहिये? मनुष्यपर कभी संकट आ भी जाता है तो वह सदा थोड़े ही रहता है। ईश्वर-भक्ति और सदाचारपर दृढ़ रहना चाहिये और उसके बलसे संकट कटनेकी आशा-प्रतीक्षा करनी चाहिये, मुझे तो विश्वास है कि इनपर दृढ़ रहनेवालेको बहुत दिनोंतक तकलीफ नहीं उठानी पड़ती। इसलिये आत्महत्याका विचार तो कभी नहीं करना चाहिये। ऐसी परिस्थितिमें केवल भगवान्‌की शरण लेनी चाहिये। भगवान्‌के शरण हो जानेपर मनुष्य सब संकटोंसे अनायास पार हो सकता है (गीता १८।५८)। हिंदू-धर्मके अनुसार परलोक और पुनर्जन्म सत्य हैं। इसलिये आत्महत्या करनेसे दु:खोंसे छुटकारा हो जायगा, यह समझना भी भारी भूल है।

आपने लिखा कि 'गरीबी ही संसारके समस्त पापोंकी जड़ है, झूठ बोलना, कपट करना, चोरी आदि करना सब इसीके अन्तर्गत हैं।' सो ऐसा नहीं मानना चाहिये। धनी लोग प्राय: गरीबोंसे अधिक झूठ बोलते हैं और पाप भी प्राय: अधिक ही करते हैं। धनियोंकी अपेक्षा गरीब धर्मके पालनमें भी बहुत अच्छे हैं, उनमें विनय होती है, ईश्वरका भय भी रहता है। धनियोंमें तो इसके विपरीत प्राय: उद्दण्डता और प्रमाद ही देखे जाते हैं। इन सब दोषोंके होनेमें कुसंग (बुरा वातावरण) और स्वभाव (अन्त:करणकी राजसी-तामसी वृत्तियाँ) ही हेतु हैं। इनको हटानेके लिये भी सत्संग और ईश्वरकी शरणागति ही मुख्य उपाय है। शरणागतिका भाव कल्याणके १४वें वर्षके विशेषांक 'गीतातत्त्वांक' में १८वें अध्यायके ६२ वें श्लोकके अर्थमें देखना चाहिये।

'पवित्र आत्मा कलुषित होती जा रही है' लिखा सो उसे पवित्र बनाये रखनेके लिये और उसकी पवित्रताकी वृद्धिके लिये भी भगवान्‌की

शरणागति ही उपाय है। ***'दुविधामें दोनों गये माया मिली न राम'*** यह उद्धरण प्रमाणमें लिखकर आपने अपनेको द्विविधाग्रस्त लिखा, सो यह द्विविधा न रखकर केवल एक भगवान्‌के नामकी ही शरण लेनी चाहिये, उसके आश्रयसे सब कुछ हो सकता है। कठोपनिषद्‌में कहा है—

एतदालम्बनँ् श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते॥

(१। २।१७)

अर्थात् 'यही श्रेष्ठ आलम्बन है, यही परम आलम्बन है। इस आलम्बनको जानकर पुरुष ब्रह्मलोकमें महिमान्वित होता है।'

आपने लिखा कि 'जिस देहसे प्राणिमात्रकी सेवा नहीं होती' वह मृतकके समान है; भगवान् उसीके प्रिय हैं, जो उनकी रची हुई प्रजामें उन्हींका स्वरूप लखकर उससे प्रेम करते हैं और उसके दु:खमें दु:खी होते हैं। सो ऐसा ही करना चाहिये। आपने लिखा कि 'आप मुझे आपत्तिके समय आश्वासन दें तथा इसका उत्तर सान्त्वनाभरे शब्दोंमें दें, जिससे मेरी आत्मा सन्तुष्ट हो।' सो आश्वासन और सान्त्वना देनेवाले तो भगवान् ही हैं। मैं तो साधारण आदमी हूँ। फिर भी आप यदि मेरे पत्रसे सन्तोष मानें तो यह आपके प्रेमकी बात है।

आपने लिखा कि 'धन तो चंचल बिजलीके समान है, इससे जो कुछ यश और धर्म कमाया जा सके, यही अच्छा है' सो बहुत ठीक है। यशसे भी धर्म कमाना उत्तम है।

[१८]

आपने पूछा, अपनी दिनचर्या किस प्रकार बनानी चाहिये, क्या-क्या नित्यकर्म करना, काम किस समय करना, कामके समय भाव कैसा रखना तथा कौन-सी पुस्तक किस समय पढ़नी चाहिये? अतएव सबेरे जागनेसे लेकर रातको सोनेतकका समय-विभाग करके यहाँ लिखा जा रहा है। आप अपने सुभीतेके अनुसार समयको कम-ज्यादा चाहे जैसे कर सकते हैं।

प्रात:काल ४ बजे—जगना।

४ बजेसे ४ :४५—शौच-स्नान आदि।

४ :४५ से ६—सन्ध्या तथा गायत्री-जप अर्थात् सन्ध्या करनेके बाद शेष एक घंटेमें गायत्रीकी सात माला जपना।

६ से ६ :३०—गीताजीका पाठ और विवेचनपूर्वक मनन करना।

६ :३० से ७ :३०—मानसिक पूजा और नाम-जपसहित ध्यान करना। ध्यानके समय यदि विक्षेप—आलस्य आवे तो ध्यानकी वृत्तियाँ बनानेके लिये भगवान्से स्तुति-प्रार्थना करनी चाहिये अथवा गीतातत्त्वांकमें प्रकाशित प्रेम, वैराग्य और ध्यानविषयक बातें पढ़नी चाहिये।

७ :३० से ८—स्वास्थ्यके लिये व्यायाम करना तथा घूमना।

८ से १०—भगवान्के नामका जप तथा उनके स्वरूपका ध्यान करते हुए ही कामको भगवान्का काम समझकर भगवान्की प्रसन्नताके लिये भगवान् ही हमारे साथ रहकर काम करवा रहे हैं—इस भावसे काम करना चाहिये।

१० से ११—भोजन करके बड़े उत्साह और प्रेमसे चित्त-वृत्तियोंको भगवन्मयी बनानेके लिये भागवत, रामायण आदिका विवेक और वैराग्ययुक्त बुद्धिसे विचार करना चाहिये, केवल पाठमात्र ही नहीं।

११ से ४—पूर्वमें ८ से १० तकके लिये बताये हुए भावके अनुसार ही काम करना।

४ से ४ :४५—शौच-स्नान आदि।

४ :४५—से ५ :३०—सन्ध्या करके गायत्रीका तीन माला जप इस समय कर लेना चाहिये।

५ :३० से ७—श्रद्धा-भक्तिपूर्वक नाम-जप करते हुए भगवान्‌के स्वरूपका गुण, प्रभाव, लीलासहित ध्यान करना चाहिये। ध्यानके समय यदि विक्षेप—आलस्य आवें तो इनके नाशके लिये वैराग्य, भक्ति, ज्ञान, ध्यान और प्रेमसम्बन्धी पुस्तकें पढ़नी चाहिये।

७ से ७ :३०—भोजन, विश्राम।

७ :३० से ८ :३०—साधना-कमेटीमें जाकर गीताका अभ्यास करना।

८ :३० से १०—सद्ग्रन्थोंका स्वाध्याय करना और संस्थाके कार्यकी आवश्यकता हो तो प्रात: ८ से १० तकके लिये बताये हुए भावके अनुसार ही संस्थाका काम करना चाहिये।

१० से ४—भगवान्‌के नामका जप तथा चरित्र और स्वरूपका ध्यान करते हुए ही सोना।

आपने लिखा कि कभी प्रार्थनामय ही बननेकी मनमें आती है, तो कभी गीता ही पढ़नेकी और कभी नाम-जपपरायण ही होनेकी मनमें आती है, तो कभी सद्ग्रन्थोंको पढ़नेकी ही प्रधानता करनेकी आती है, सो ठीक है। भगवान्‌के नामका जप और स्वरूपका ध्यान तो हर समय—आठों पहर ही रखनेकी चेष्टा करनी चाहिये। सोनेके समय नाम-जप और ध्यान करते हुए ही सोना चाहिये तथा सोते हुए भी स्वप्नमें नाम-जप और ध्यान ही करते रहना चाहिये। रही गीता और सद्ग्रन्थोंके पढ़नेकी तथा प्रार्थना करनेकी बात, सो समय-समयपर ऐसा करनेके लिये ऊपर लिखा ही है।

आपने लिखा कि कमेटीमें जानेसे कभी-कभी तो उलटा निरुत्साह ही होता है, सो ठीक है, कमेटीमें न जायँ तो कोई हर्ज नहीं।

आपने लिखा कि और भी बहुत-सी बातोंको लेकर खटपट बनी ही रहती है। आपसे पूछनेकी मनमें आती है; किन्तु फिर यह मनमें आ जाता है कि 'भजन-ध्यानसे यह सब मिट जायगी' सो ठीक है; परन्तु हमसे पूछनेमें आपको कोई संकोच नहीं करना चाहिये।

आपने लिखा कि 'काम करते समय नाम-जप खूब अच्छी तरह हो सकता है—यह तो खूब विश्वास है।' सो ठीक है, यदि काम करते समय

जप, ध्यान और प्रसन्नता, शान्ति रहे तो फिर काममें अधिक समय लगाया जाय तो भी कोई हर्ज नहीं; क्योंकि ऐसा काम भी उत्तम साधन है (गीता ८। ७; १८। ५७)।

आपने लिखा कि कभी मनमें आता है कि दूध पीना चाहिये और कभी मनमें आता है कि अपने शरीरके लिये इतना अधिक खर्च नहीं करना चाहिये सो ठीक है, यदि हजम हो तो दोनों समय दूध पीना चाहिये। दूध सात्त्विक पदार्थ है। इसके सेवनसे वृत्तियाँ सात्त्विक रहती हैं। यह मेरा अपना अनुभव है। दूधके खर्चको अधिक खर्च नहीं समझना चाहिये। वह तो सादे जीवनमें ही शामिल है।

व्यायामके बारेमें लिखा सो ठीक है, व्यायाम नियमपूर्वक करना चाहिये। शीर्षासन १० मिनटसे ज्यादा नहीं करना चाहिये।

आपने अपने मनके अनुकूल ही उत्तर न लिखनेके लिये लिखा, सो ठीक है, आपके मनके अनुकूल ही सब बातें नहीं लिखी हैं। आपकी प्रकृति, स्वास्थ्य, समय, कार्यकी परिस्थिति तथा सुविधाको लक्ष्यमें रखकर ही ये सब बातें लिखी गयी हैं।

व्यर्थकी बातोंमें बहुत समय चला जाता लिखा, सो व्यर्थ बातें तो न सुननी और न करनी ही चाहिये। इस विषयमें जितना संयम करें, उतना ही अच्छा है और आपमें तो प्रायः संयम ही देखा जाता है। यदि योग्यतासे उचित मात्रामें बोलनेका काम पड़े तो उसके लिये ग्लानि नहीं करनी चाहिये। बात करते समय बात करनेवालेके स्थानमें या उसके अंदर भगवान्‌को देखना चाहिये; फिर बात भी साधन हो सकता है।

[१९]

सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपने पहले भी पत्र लिखा था; परन्तु मेरा उत्तर न पहुँचा। इसका कारण यह हो सकता है कि कुछ दिनों पहले मेरी एक पेटी, जिसमें बहुत-से कामके कागज तथा पत्र आदि थे, खो गयी थी। सम्भव है, उसीमें आपका पत्र रहा हो और इसीसे उत्तर न जा सका हो। इस पत्रमें भी पता न रहनेसे मैं इसका उत्तर डाकद्वारा आपको न लिख सका।

आप मेरे लेख 'कल्याण' में पढ़ते हैं और वे आपको अच्छे लगते हैं, सो आपके प्रेमकी बात है।

आपका शरीर कमजोर है। इसके लिये आपको नियमित व्यायाम और दूधका सेवन अधिक करना चाहिये। साथ ही बड़ी सावधानीसे ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये।

आप श्रीमारुतिजी (श्रीहनूमान्‌जी)-की सेवा करते हैं, सो बहुत ठीक है। आपने लिखा कि 'मैं सेवा गुप्तरूपसे करता हूँ। घरवालोंके नाराज होनेका डर रहता है। उनसे छिपाकर रखनेका फिक्र लगा रहता है' इसके उत्तरमें यह निवेदन है कि उत्तम कार्य या साधन छिपाकर करने तो अच्छे हैं। इनका गुप्त रखना कोई पाप नहीं है, बल्कि गुप्त रखनेकी विधि है। परन्तु फिक्र क्यों करना चाहिये। घरवालोंको मालूम हो जानेमें क्यों आपत्ति होनी चाहिये। मेरी समझसे—घरमें प्रतिदिन बड़ोंको प्रणाम करने, उनकी सेवा करने, आज्ञापालन करने और नम्रतापूर्वक समझाकर सन्तोष करानेसे वे सब अपने अनुकूल हो सकते हैं। श्रीमारुतिजीकी भक्ति तो अच्छी बात है; घरवालोंके अनुकूल रहकर उनकी सेवा करनेसे—वे इस भक्तिसे नाराज क्यों होने लगे? इसपर भी यदि आप यह समझें कि उनको सन्तोष नहीं है तो गुप्तरूपसे ही श्रीमारुतिजीकी भक्ति करते रहिये।

श्रीहनूमान्‌जीकी भक्ति करना बहुत उत्तम है, हनूमान्‌जी भगवान्‌के परम भक्त हैं, अतएव हनूमान्‌जीकी भक्तिसे श्रीभगवान् बहुत प्रसन्न होते हैं।

ध्यानके समय नींद सताने लगती है, इसके नाशके लिये श्रीरामायणके दोहे-चौपाई और छन्द आदिका अर्थ समझनेमें बुद्धिको लगाना चाहिये। बुद्धिमें चेतनता आनेसे मन लग सकता है और नींद दूर हो सकती है। श्रीरामायणके अध्ययनसे श्रीहनूमान्‌जी तो प्रसन्न होते ही हैं।

आपने लिखा कि 'मुझे दो साल हो गये, तीसरा भी आरम्भ हो गया, परन्तु कुछ लाभ नहीं हुआ।' सो इसके लिये साहस और उत्साहको कम न होने देना चाहिये किसी आदमीको पुरानी बीमारी हो और वह कुछ ही दिन चिकित्सा करवाकर ऊब जाय तो उसकी बीमारी कैसे मिटेगी? पुराने रोगके नाशके लिये तो दीर्घकालतक दवा लेनेकी जरूरत है। फिर यह तो अनेकों जन्मोंका रोग है, इससे छुटकारा पानेके लिये बहुत दिनोंतक निरन्तर साधन करनेकी आवश्यकता है। कुछ ही दिनोंमें सफलता न मिले तो उत्साहको कम न होने देना चाहिये। बल्कि उत्तरोत्तर अधिक उत्साह और उमंगके साथ साधन करना चाहिये। दूसरे भजन-ध्यानसे बढ़कर कोई वस्तु है ही नहीं, अतएव इसमें जरा भी शिथिलता नहीं करनी चाहिये।

आपका मन अधिक-से-अधिक पाठ करने और सीताराम-सीताराम रटनेका होता है, सो बहुत अच्छी बात है। घरवालोंकी नाराजी मिटानेके लिये उनकी सेवा करनी चाहिये और मनकी सारी परिस्थिति उन्हें विनम्रताके साथ समझानी चाहिये तथा जहाँतक हो, उन्हें पूरा सन्तोष कराना चाहिये।

आपके घरवाले आपका विवाह करनेपर जोर देते हैं, परन्तु आपका स्वास्थ्य ठीक न होनेके कारण आप विवाह नहीं करना चाहते। इस सम्बन्धमें मेरी तो यह राय है कि वास्तवमें आप अस्वस्थ हों, स्त्रीमें आसक्ति न हो और स्त्रीके भरण-पोषण करनेकी अपनेमें योग्यता न समझते हों तो वैसी हालतमें विवाह न करनेमें कोई हानि नहीं है।

आगेके लिये मेरी यही सलाह है कि विषयोंमें न फँसकर व्यवसायको भी—श्रीभगवान्‌का काम समझकर, भगवान्‌को सदा अपने पास मानकर उनकी प्रसन्नताके लिये किया जाय तो ऐसा निष्काम व्यवसाय भी

भजनके ही समान समझा जाता है। काम करते हुए भी भजन-ध्यान कैसे हो सकता है; इस सम्बन्धमें तत्व-चिन्तामणि भाग ५ में प्रकाशित 'काम करते हुए भगवत्प्राप्तिकी साधना' शीर्षक लेख देखना चाहिये और बन सके तो उसके अनुसार चेष्टा करनी चाहिये।

आपको यह निश्चय रखना चाहिये कि भगवान्‌की सेवा कभी निष्फल नहीं होती।

आपने लिखा 'शक्तिहीन मनुष्य कुछ नहीं कर सकता' सो शक्तिहीन मनुष्यको मनसे भजन-ध्यान आदि करने चाहिये। बलके लिये प्रार्थना करनेपर प्रभुसे बल भी मिल सकता है, पर छोटी बातके लिये उनसे याचना नहीं करनी चाहिये—इसको प्रारब्धके भरोसे छोड़ देना चाहिये; भजन तो केवल भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये ही करना चाहिये।

आपने लिखा 'एक प्रतिष्ठित परिवारमें भजन-ध्यान कैसे हो सकता है?' सो मेरी समझमें नहीं आता कि प्रतिष्ठित परिवारको इसमें क्यों आपत्ति होनी चाहिये? भगवान्‌के भजनमें जाति, वंश किसीकी भी बाधा नहीं रहती तथा मनमें प्रेम और टान हो तो कोई बाधा दे भी नहीं सकते। अतएव भजन-ध्यानके लिये मनमें प्रेम और टान जितनी बढ़ सके, बढ़ानी चाहिये एवं भगवान्‌पर पूरा भरोसा रखकर साधन करते रहना चाहिये। फिर सब विघ्न-बाधाएँ आप ही हट जा सकती हैं और उत्साह भी मिल सकता है।

---

[२०]

आपका पत्र मिला। मेरे द्वारा दिया हुआ आपके प्रश्नोंका उत्तर मिलनेसे आपको शान्ति मिलती लिखा, सो आपके प्रेमकी बात है। आप राम-नाम जपते हैं तथा आपको इससे शान्ति मिलती है, सो बहुत आनन्दकी बात है। इस पत्रमें पूछे हुए प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार समझना चाहिये।

१.प्रश्न—ज्ञानी जब शरीर छोड़ता है, तब उसका पुण्यकर्म सेवा

करनेवालेको मिलता है और पापकर्म निन्दकको। सो क्या बात है? ज्ञानीके तो कुछ भी कर्म नहीं रहता तो फिर दूसरेको कैसे मिलता है? वह तो संचित, प्रारब्ध और आगामी—सबसे मुक्त हो जाता है।

उत्तर—आपका लिखना बहुत ठीक है। वास्तवमें ज्ञानीके सारे कर्म भस्म हो जाते हैं। तब सेवा करनेवालेको ज्ञानीके पुण्यकर्म मिलते हैं और निन्दा करनेवालेको पापकर्म—यह मानना असंगत है। हाँ, यह बात अवश्य है कि जो ज्ञानीकी सेवा करता है, उसे सेवाके फलस्वरूप पुण्य होता है और जो उसकी निन्दा करता है, उसे निन्दाके फलस्वरूप पाप लगता है। इसमें एक बात और भी समझनेकी है। वह यह कि किसीकी भी सेवा की जायगी तो पुण्य होगा और किसीकी निन्दा की जायगी तो पाप होगा। किन्तु जैसे सामान्यतः जलमात्रमें शौच जाना ही पाप है, परन्तु श्रीगंगाजीमें शौच जानेसे अधिक पाप लगता है, इसी प्रकार ज्ञानीकी निन्दा करनेसे अधिक पाप लगता है और उसकी सेवा करनेसे अधिक पुण्य होता है।

२.प्रश्न—योगभ्रष्ट पुरुष पूर्वके अभ्याससे फिर योगमें प्रवृत्त हो जाता है तो पूर्वमें यदि बुरा कर्म किया है तो उसका संस्कार भी तो पापकर्ममें प्रवृत्त करेगा, इससे वह फिर योगभ्रष्ट हो जायगा, सो क्या बात है?

उत्तर—आपका पूछना ठीक है, किन्तु जिस प्रकार एक मनुष्यको किसी दूसरेके कुछ रुपये देने हैं। वह इस वक्त रुपये पास न होनेसे चुका तो नहीं सकता; किन्तु अच्छी नीयतसे उसे चुका देनेका वादा करता है, तो भला आदमी उसे अवसर दे देता है, उसपर कोई कड़ी कार्यवाही नहीं करता। इसके बाद वह जब रुपये कमाकर उसे दे देता है तब ऋणसे मुक्त हो जाता है। इसी प्रकार योगभ्रष्टके पूर्वाभ्याससे साधनकी ओर झुक जानेपर पूर्वके बुरे संस्कारोंका प्राबल्य रुक जाता है और बादमें उसके साधन करते रहनेसे वे बुरे संस्कार नष्ट हो जाते हैं। तब फिर वे उसे पापकर्ममें प्रवृत्त करके पुनः योगभ्रष्ट नहीं कर सकते।

३.प्रश्न—आप लिखते हैं कि कर्मयोगसे मोक्ष मिलता है और ज्ञानसे

भी, किन्तु कर्मयोगसे तो अन्तःकरणकी शुद्धि होती है फिर मुक्ति कैसे मिलेगी? मुक्ति तो ज्ञानसे ही मिलती है। इसमें क्या बात है?

उत्तर—कर्मयोग और ज्ञानयोग दोनों ही अलग-अलग स्वतन्त्र साधन हैं। इन दोनोंका जो एक फलरूप ज्ञान है, वह इनसे विलक्षण है। कर्मयोगसे अन्तःकरणकी शुद्धि होनेके बाद ज्ञानयोगका साधन करनेसे भी मुक्ति होती है, किन्तु कर्मयोगसे अन्तःकरण शुद्ध होकर ईश्वरकी कृपासे स्वतः ही ज्ञान हो जाता है (गीता ४। ३८; १८। ५६)। इस प्रकार कर्मयोग स्वतन्त्र साधन भी है। इसीलिये कर्मयोग और ज्ञानयोग—इन दोनोंको अलग-अलग स्वतन्त्र साधन लिखा है (गीता ५। ४-५; १३। २४)।

४. *प्रश्न*—किसी आदमीने किसीका घर जला दिया या किसीको मार डाला तो उसको तो उसके पापका फल मिला, फिर घर जलानेवाला या मारनेवाला पापका भागी क्यों बनता है।

उत्तर—जिसका घर जलता है या जो मरता है, उसका तो यह प्रारब्धका ही फल है, किन्तु जलानेवाले या मारनेवालेका यह अपराध है। जिस प्रकार अदालत किसी अपराधीको फाँसी देनेका हुक्म देती है और यदि उस अपराधीको कोई दूसरा आदमी यह समझकर मार डालता है कि इसे मारना तो है ही, राजकर्मचारी मारे या मैं मार डालूँ, तो वह अपराधी समझा जाता है और उसे इसका दण्ड मिलता है, क्योंकि उसको उसे मारनेका कोई हक या हुक्म नहीं था। सरकारकी ओरसे अपराधीको फाँसी देनेका स्वतन्त्र प्रबन्ध है। इसी प्रकार परमात्माके राज्यमें अपराधीको दण्ड देनेका स्वतन्त्र प्रबन्ध है। इसीसे कोई यदि किसीका घर जलाता है, मारता है या कष्ट पहुँचाता है तो वह अपराध करता है और दण्डका भागी बनता है।

५. *प्रश्न*—ध्यान करते समय यदि भगवान्‌का दूसरा रूप आ जाय तब क्या करना चाहिये? जैसे रामरूपका ध्यान करते समय श्रीकृष्ण या विष्णुरूप आ जाय तो किस रूपका ध्यान करना चाहिये? और इष्टदेवके ध्यानके समय साधक अपने गुरुदेवका या किसी महापुरुषका ध्यान कर सकता है या नहीं?

उत्तर—अपने इष्टस्वरूपका ध्यान करते समय यदि दूसरा रूप आ जाय अर्थात् रामरूपका ध्यान करते समय श्रीकृष्ण, विष्णुरूप आ जाय तो अपने इष्टरूपके ध्यानसे दूसरे रूपके ध्यानका अधिक आदर करना चाहिये। क्योंकि ध्यान जो हम करते हैं, वह हमारी इच्छासे किया जाता है और ध्यान करते समय जो दूसरा रूप आता है, वह प्रभुकी इच्छासे आता है। इसलिये प्रभुकी इच्छासे आया हुआ रूप अधिक आदरणीय है। परन्तु यह विश्वास रखना चाहिये कि सारे रूप एक ही भगवान्‌के हैं। अपने इष्टदेवके ध्यानके साथ किसी महापुरुष या गुरुदेवका ध्यान करनेमें कोई दोष नहीं है, किन्तु केवल एक इष्टदेवका ही ध्यान करना सबसे उत्तम है।

६.*प्रश्न*—भगवान् जब दर्शन देते हैं, तब क्षीरसमुद्रसे देते हैं या वैकुण्ठलोकसे या साकेतलोकसे अथवा अन्तर्यामी सर्वव्यापी ब्रह्म दर्शन देते हैं—इसमें क्या बात है तथा कर्मका फल भी कौन देते हैं?

उत्तर—क्षीरसमुद्र, साकेतलोक, वैकुण्ठ—ये सब एक ही परमधामके ही नाम हैं। उस एक परमधामको ही श्रीकृष्णके उपासक गोलोक, श्रीरामके उपासक साकेतलोक, विष्णुके उपासक वैकुण्ठलोक कहते हैं। उस परमधामका स्वामी सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ सृष्टिकर्ता परमेश्वर है। वह सर्वोपरि है। उससे ऊपर कोई नहीं है। वही भक्तोंको दर्शन देता है और वही सच्चिदानन्दघन ब्रह्म है (गीता १४। २७) तथा वही जीवोंको उनके कर्मोंके अनुसार फल देता है।

७.*प्रश्न*—यदि भगवान्‌का दर्शन हो जाय और भगवान् पहचाननेमें न आयें तो उसकी मुक्ति हो जायगी कि नहीं?

उत्तर—भगवान्‌का दर्शन होनेसे बहुत लाभ है; किन्तु यदि भगवान्‌को पहचाना नहीं तो उसको मुक्ति देनेके लिये भगवान् बाध्य नहीं हैं, अनन्य-भक्तिसे ही बाध्य हैं (गीता ११। ५४)। जब श्रीकृष्णभगवान्‌का अवतार हुआ, उस समय जिन्होंने उनको नहीं पहचाना, उनकी मुक्ति नहीं हुई; बल्कि भगवान्‌को न पहचाननेवालोंको मूढ़ बतलाया है (गीता ९। ११, १२; ७। २५)।

८.प्रश्न—भगवान् राम, विष्णु और कृष्णमें क्या भेद है? रामायणमें, विष्णुपुराणमें कहींपर भेद लिखा है, सो क्या बात है? जो अवतार लेते हैं, सो किनका अवतार होता है, कारण तो कोई होगा?

उत्तर—भगवान् राम, कृष्ण, विष्णुमें कोई भेद नहीं है। केवल नाम-रूपका भेद है। वस्तुतः कोई भेद नहीं है। जैसे एक ही पुरुष पहले ब्रह्मचर्याश्रममें रहे और पीछे गृहस्थ बन जाय तथा गृहस्थसे संन्यासी बन जाय तो वस्तुतः वह एक ही है, केवल वेशमात्रका भेद है। वह सर्वान्तर्यामी सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ परमात्मा ही अवतार लेता है। रामायणमें रामको तथा विष्णुपुराणमें विष्णु-कृष्णको सर्वोपरि कहा है, उसका यह अर्थ है कि उपासकको अपने इष्टरूपको सर्वोपरि मानकर उपासना करनी चाहिये। इससे उस रूपमें श्रद्धा-प्रेम होकर साधकको शीघ्र सफलता मिलती है। श्रीपार्वतीजी भगवान् शंकरके लिये तपश्चर्या करती हैं। उनसे कहा गया कि वे शंकरकी उपासना छोड़कर विष्णुकी ही आराधना करें; किन्तु श्रीपार्वतीजी इससे विचलित न हुईं और अपने इष्टकी आराधनामें ही लगी रहीं, इससे उन्होंने सफलता प्राप्त की। इसी तरह साधकको अपने इष्टरूपको ही सर्वोपरि मानकर उन्हींकी उपासना करनी चाहिये।

९.प्रश्न—भगवान्की अहैतुकी कृपा होती है या नहीं? अगर होती है तो किस समय होती है? किस जीवपर होती है? या सबपर होती है?

उत्तर—भगवान्की कृपा अहैतुकी ही होती है और वह सभीपर सब समय रहती है। किसी समय जो हेतुसे हुई दीखती है उसमें साधकके श्रद्धा-प्रेमके तारतम्यके कारण ही कृपामें भी न्यूनाधिकता दीखती है।

१०.प्रश्न—प्रारब्धकर्म मिटता है या नहीं? भगवान्के दर्शनमें या उनके द्वारा मारे जानेमें कौन विशेष लाभदायक है और कल्कि-अवतार हुआ है या नहीं? राजनारायणजी लिखते हैं, सो क्या बात है? पापकर्म तो बहुत बढ़ गया, वर्णव्यवस्था भी सब छोड़ रहे हैं। आपकी क्या सम्मति है?

उत्तर—प्रारब्ध प्रायः भोगनेसे ही मिटता है। भगवान्का वरदान

आदि कोई विशेष कारण हो जाय तो भगवान्‌की कृपासे बिना भोगे ही मिट जाता है, क्योंकि भगवान् तो असम्भवको भी सम्भव कर सकते हैं। भगवान्‌के हाथसे मरनेकी अपेक्षा उनका दर्शन होना श्रेष्ठ है; क्योंकि हाथसे मरनेकी आशासे तामसभावका अवलम्बन करना पड़ता है। कल्कि-अवतार अभी नहीं हुआ और जल्दी होनेकी आशा भी नहीं है। अभी वह स्थिति नहीं आयी है, जिसमें भगवान्‌को अवतार लेना पड़े।

आपने पूछा कि मुझे मृत्युका भय लगता है, उसको छोड़ दूँ या याद रखूँ। शास्त्रोंमें तो याद रखनेको लिखा है? सो ठीक है। मृत्युको याद करनेका यह तात्पर्य है कि मृत्युके याद रहनेसे साधन तेज होता है, भगवान्‌की स्मृति अधिक होती है। यदि ऐसा न हो तो मृत्युको याद रखकर चिन्ता करनेकी कोई जरूरत नहीं।

[२१]

आपका पत्र मिला। समाचार जाने। × × × × आपका शरीर बहुत ही कमजोर हो गया, आप चलते-चलते गिर पड़ने लगते हैं, इससे देखनेवाले हँसते हैं और आपको चिढ़ाते हैं। सो लोग तो ऐसा कर सकते हैं, परन्तु आपको लोगोंके हँसने-चिढ़ानेपर दुःख नहीं करना चाहिये।

आपको दूध पीनेसे कुछ घृणा-सी होती है—ऐसा लिखा, सो दूध तो सब प्रकारसे हितकर चीज है, उसमें घृणा नहीं होनी चाहिये। आपके शरीरमें शक्ति न होनेसे आप अन्य व्यायाम न कर सकें तो साधारण आसनोंका अभ्यास करना चाहिये।

स्वप्नदोषके निवारणके लिये मन, इन्द्रिय, शरीरका संयम रखना चाहिये। आठ प्रकारके मैथुनोंमेंसे* किसी भी मैथुनका दोष न आवे—ऐसा प्रयत्न करना चाहिये। मनको विवेक-विचारपूर्वक समझाना चाहिये।

---

* स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च॥

विवेक-विचारसे मन न माने, तो हठसे संयम करना चाहिये। आप ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं, सो अच्छी बात है। ब्रह्मचर्यके पालनकी चेष्टा करनेपर भी स्वप्नदोष होते हैं तो फिर यही समझा जाता है कि यह पूर्व-जन्मके पापोंका फलरूप भोग ही है।

आपने लिखा कि 'मैं जो मारुतिजीकी भक्ति करता हूँ, उसे यदि घरवालोंके सामने प्रकट कर दूँ तो मेरी भक्तिमें बाधा आती है, क्योंकि मुझे हर समय पाठ वगैरह करनेमें संकोच हो जायगा।' यदि ऐसी बात है तो प्रकट न करें।

आप श्रीमारुतिजीकी भक्तिमें समय-कुसमय तथा पवित्र-अपवित्रका खयाल नहीं करते, किसी भी समय पाठ कर लेते हैं, नित्य पैंतालीस पाठ करते हैं और अवशेष समय 'सीताराम-सीताराम' रटते रहते हैं। सो बहुत ठीक है। हो सके तो पाठ मानसिक करना चाहिये। मानसिकका महत्त्व भी बहुत है और अपवित्र अवस्थामें भी मानसिक पाठ किया जाता है।

अब इतने पाठ भी नहीं हो पाते, न जाने भगवान्‌की क्या मरजी है—लिखा, सो भगवान्‌की मरजी तो बहुत ही अच्छी है, केवल आपके प्रयत्नकी कमी है। पाठ करते समय निद्रा ज्यादा सताती है, इसके लिये आपको पद्मासन, सिद्धासन अथवा स्वस्तिकासनमेंसे किसी आसनसे बैठना चाहिये। अन्न अधिक न खाना चाहिये और खट्टे पदार्थोंका सेवन नहीं करना चाहिये। इससे आलस्य कम हो सकता है।

आपने लिखा कि रामायणका पाठ करनेपर सबको मालूम हो जायगा और लोग व्यंग करने लगेंगे। सो उनके व्यंग करनेकी सम्भावना और भयसे आपको पाठसे वंचित क्यों रहना चाहिये। आपको लोगोंका व्यंग सहना उचित है। आपके शरीरको देखकर लोग व्यंग करें तो भी उसे सहना चाहिये और उनसे कहना चाहिये कि यह सब प्रारब्धका भोग है।

'स्त्रीका स्मरण, स्त्रीसम्बन्धी बातचीत, स्त्रियोंके साथ खेलना, स्त्रीको देखना, स्त्रीसे गुप्त भाषण करना, स्त्रीसे मिलनेका संकल्प करना, चेष्टा करना और स्त्रीसंग करना—ये आठ प्रकारके मैथुन माने गये हैं।'

पिताजीके कहे अनुसार आप मुकद्दमा आदिके काममें हाथ नहीं बटाते तथा अखबार भी पढ़ना नहीं चाहते, सो ठीक है, किन्तु यदि करनेकी शक्ति हो तो पिताजीके आज्ञानुसार जो न्याययुक्त काम हो उसे करना चाहिये, चाहे वह मुकद्दमा-मामला ही क्यों न हो। हाँ, अन्यायका काम हो, या करनेकी शक्ति न हो तो पिताजीको विनयपूर्वक समझा देना चाहिये। अखबार पढ़नेसे पिताजीको सन्तोष हो तो पढ़ सकते हैं। बिना आसक्तिके पढ़नेपर आपपर उसका बुरा असर नहीं हो सकता।

आपको पिताजी विवाहके लिये कहते हैं, किन्तु आपकी इच्छा विवाह करनेकी नहीं है, सो ठीक ही है। जब आपका शरीर इतना अशक्त है, आप उठ-बैठ भी नहीं सकते, तो ऐसी अशक्तावस्थामें आपको विवाह कभी नहीं करना चाहिये। पिताजीको विनयपूर्वक समझा देना चाहिये। आपने लिखा कि विवाह नहीं करता तो पिताजीका अपयश होता है, लोग आक्षेप करते हैं और विवाह करता हूँ तो वह भी एक बड़ा भयंकर प्रश्न होता है, क्योंकि उससे मेरी और एक स्त्रीकी दुर्दशा होगी। सो ठीक है। ऐसी स्थितिमें विवाह करनेमें ही अधिक बुराई है, न करनेमें नहीं। आपके लिये माता-पिताको अपयश-आक्षेपसे बचाना विवाह न करनेसे ही सम्भव है। हाँ, जब शरीरमें पर्याप्त शक्ति आ जाय और आपकी इच्छा हो तब भले ही कर सकते हैं।

[२२]

कलकत्तेसे एक दसवीं कक्षाके विद्यार्थीका पत्र मिला है। नाम-पता न होनेसे उन्हें पत्र न दिया जा सका। उन्होंने लिखा है कि मेरे कोई भी काम करनेसे मेरे पिताजी मुझपर क्रोधित हो जाते हैं, इस विषयमें मुझे क्या करना चाहिये, सो ठीक है, इस सम्बन्धमें मेरी सम्मति यह है—

आपको अपने पिताजीके संकेत, हुक्म और सन्तोषके अनुसार चेष्टा करनी चाहिये। इसीमें आपका सब प्रकारसे कल्याण है। श्रुति कहती है—

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव।

(तैत्तिरीय० १। ११)

'माता, पिता और आचार्यको देवता (ईश्वरके तुल्य) माननेवाला हो।' और मनुजी कहते हैं—

यं मातापितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि॥

(मनु० २। २२७)

'मनुष्यके उत्पत्ति-समयमें जो क्लेश माता-पिता सहते हैं, उसका बदला सौ वर्षोंमें भी नहीं चुकाया जा सकता।'

इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्या तु मध्यमम्।
गुरुशुश्रूषया त्वेवं ब्रह्मलोकं समश्नुते॥

(मनु० २। २३३)

'माताकी भक्तिसे इस लोकको, पिताकी भक्तिसे मध्य लोकको और इसी प्रकार गुरुकी भक्तिसे ब्रह्मलोकको पाता है।'

त्रिष्वेतेष्वितिकृत्यं हि पुरुषस्य समाप्यते।
एष धर्मः परः साक्षादुपधर्मोऽन्य उच्यते॥

(मनु० २। २३७)

'इन तीनोंकी सेवासे पुरुषका सब कर्तव्यकर्म पूर्ण होता है, यही साक्षात् परम धर्म है, इसके अतिरिक्त अन्य सब धर्म 'उपधर्म' कहे जाते हैं।'

अतः जिस प्रकार माता-पिताको सन्तोष हो, आपको वही करना चाहिये। उनकी इच्छा, संकेत और आज्ञाके अनुसार अपनेको बना लेना चाहिये। इस प्रकार करनेपर उनका क्रोध शान्त हो सकता है और उनको सन्तोष भी अवश्य होना चाहिये। इसपर भी यदि सन्तोष न हो तो आत्मघातकी कल्पना तो कभी भूलकर भी नहीं करनी चाहिये। यदि वे नाराज हो जायँ और आपको छोड़ दें तो उसे सह लेना चाहिये; आप जीते रहेंगे तो फिर भी कभी उन्हें सन्तोष करा सकेंगे और सन्तोष न भी करा सकेंगे तो भी उसमें इतना पाप नहीं है, जितना आत्महत्यामें है।

इसलिये कितना भी कष्ट क्यों न हो मनुष्यको आत्महत्या तो कभी करनी ही नहीं चाहिये। आत्महत्या करनेसे इस जीवनसे हाथ धो बैठनेमात्रका ही नुकसान नहीं है, उसकी परलोकमें बहुत दुर्गति होती है। आत्महत्या करनेवालेको तो घोर नरककी प्राप्ति बतलायी गयी है।

श्रुति कहती है—

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः।
ताꣳस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥

(ईश० ३)

'जो मनुष्य आत्माके हनन करनेवाले हैं वे मरकर घोर अन्धकारसे आच्छादित आसुरी योनियोंको प्राप्त होते हैं।'

[२३]

आपका कृपापत्र प्राप्त हुआ। समाचार जाने। आपसे प्रार्थना है कि मुझे अपने छोटे भाईके समान समझकर समान व्यवहारके ही शब्दोंका प्रयोग किया कीजिये। 'पूज्यपाद' और 'चरणवन्दन' आदि शब्दोंका प्रयोग करके मुझे संकोचमें नहीं डालना चाहिये। आपके प्रश्नोंका क्रमशः उत्तर दिया जाता है—

१. प्रश्न—श्रीभगवान्‌के स्वरूपका ध्यान हृदयमें करना चाहिये अथवा बाहर सवा हाथ दूर तथा हाथकी ऊँचाईपर? दोनोंमें उत्तम कौन है?

उत्तर—श्रीभगवान्‌के स्वरूपका ध्यान दोनों प्रकारसे ही उत्तम है। दोनों ही प्रकारके ध्यान मनसे होते हैं, इसलिये इनमें उत्कृष्टता और निकृष्टताका भेद नहीं है। अपनी रुचि और सुविधाके अनुसार करना चाहिये।

२. प्रश्न—ध्यान भगवान्‌के नख-शिख समस्त रूपका करना चाहिये अथवा केवल मुखारविन्द अथवा चरणारविन्दका? यदि चरणारविन्दका किया जाय तो सरकार जिस प्रकार खड़े हैं, वैसे ही पंजोंका अथवा तलवोंका? उत्तम कौन-सा है?

उत्तर—ध्यानके आरम्भमें चरणारविन्दोंसे प्रारम्भ करके मस्तकतक पूरे स्वरूपका ध्यान करना चाहिये। एक बार पूरा-पूरा ध्यान हो जानेपर केवल मुखारविन्द या चरणारविन्दपर ही अपने मनको टिका देना चाहिये। दासभावके भक्तोंको प्रधानतः चरणारविन्दका और सखाभावके भक्तोंको प्रधानतः मुखारविन्दका ध्यान करना चाहिये। चरणोंका ध्यान जैसे भगवान् खड़े हैं, वैसे हो अथवा नीचेसे उनके तलवोंको ही देखा जाय। दोनों ही अपनी रुचि और प्रीतिपर निर्भर करते हैं। इनमें कोई श्रेष्ठ, कनिष्ठका भेद नहीं है।

३. *प्रश्न*—प्रातःकाल और सायंकाल कैसा ध्यान करना चाहिये? इसके अतिरिक्त काम करते समय ध्यानका क्या स्वरूप होना चाहिये?

उत्तर—जो ध्यान प्रातःकालका है, वही सायंकालका भी। अपने इष्टदेवके गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्य, रूप, लीला आदिका दोनों समय ही चिन्तन करते हुए ध्यान करना चाहिये। समयके अनुसार सेवा-पूजाकी प्रणालीमें भेद हो सकता है। विभिन्न लीलाओंका भी चिन्तन कर सकते हैं, परंतु इष्टदेव एक ही होने चाहिये। काम करते समय ऐसा चिन्तन करना चाहिये कि भगवान् सर्वदा मेरे साथ हैं—मैं चलता हूँ तब चलते हैं, बैठता हूँ तब बैठते हैं, खाता हूँ तब खाते हैं, मेरी आँखोंसे एक क्षणके लिये भी ओझल नहीं होते। उनका वरद हस्त मेरे सिरपर सदा बना ही रहता है। वे नित्य-निरन्तर अपने प्रेम, कृपा आदि गुणोंकी सुधा-धारासे मुझे सराबोर किये रहते हैं। उनकी मन्द-मन्द मुसकान, प्रेमभरी चितवन, पीताम्बरकी झलक और नख-छटाका प्रकाश क्षण-क्षणपर अनुभव करते रहना चाहिये। ऐसा अभ्यास करनेपर थोड़े ही दिनोंमें बड़े अमृतमय रसका अनुभव होने लगता है।

४. *प्रश्न*—ध्यान युगल-सरकारका करना चाहिये अथवा केवल सरकारका ही? कारणसहित बतलाइये।

उत्तर—श्रीभगवान्में युगल और एकका भेद नहीं है। एकमें भी युगल हैं और युगल भी एक ही हैं। इसलिये ध्यान चाहे युगल छबिका किया जाय—चाहे केवल भगवान्के श्रीविग्रहका। एक ही बात है। साधकोंकी

अपनी रुचि-प्रवृत्ति, प्रीति, श्रद्धा और अधिकारके अनुसार ही उनके लिये ध्यानकी व्यवस्था है। आपके पत्रको देखते जान पड़ता है कि आपको युगल-सरकारका ही ध्यान करना चाहिये।

५.*प्रश्न*—प्रारम्भमें ध्यान कितनी देरतक करना चाहिये और कितनी बार?

उत्तर—प्रारम्भमें कम-से-कम प्रातःकाल और सायंकाल नियमसे आध-आध घंटे तो ध्यान अवश्य ही करना चाहिये। कितनी बारका कोई नियम नहीं है। उत्तम तो यही है कि मनुष्य प्रतिक्षण ध्यानमग्न रहे। इसलिये अधिक-से-अधिक ध्यानकी चेष्टा ही कर्तव्य है।

६.*प्रश्न*—ध्यानके साथ नाम-जप करना चाहिये अथवा नहीं? मन-ही-मन स्वरूपका वर्णन और मनके नेत्रोंसे भगवान्‌की झाँकीका दर्शन करना भी तो ठीक है न?

उत्तर—जप ध्यानमें बड़ा ही सहायक है। इससे साधक निरन्तर जाग्रत् रहता है और इष्टदेवका मन्त्र अथवा नाम उसे प्रतिक्षण ध्यानमें लगनेकी प्रेरणा करता रहता है। मन-ही-मन रूपका वर्णन और मनके नेत्रोंसे उनकी झाँकीका दर्शन भी श्रेष्ठ है। दोनोंमेंसे जो आपके अनुकूल पड़े वही करना चाहिये।

७.*प्रश्न*—ध्यानके समय कौन-कौनसे विघ्न आते हैं और उनका निराकरण किस प्रकार करना चाहिये?

उत्तर—ध्यानके मुख्य विघ्न दो हैं—आलस्य और विक्षेप। आलस्यका अर्थ है—मनके तन्द्रित हो जानेके कारण भगवान्‌का चिन्तन न होना। विक्षेपका अर्थ है—भगवान्‌के अतिरिक्त मनमें अन्य विषयोंका आना—मनका विषयोंमें भटकना। इन विघ्नोंके निवारणके चार उपाय हैं—(१) ध्यानके समय पीठकी रीढ़को सीधा रखा जाय, (२) नेत्र खुले रहें, (३) सावधानीके साथ नाम-जप होता रहे और (४) शास्त्रानुकूल भगवान्‌के गुण, प्रभाव और लीलाओंका विवेचन हो।

८.*प्रश्न*—ध्यानके सहायक क्या-क्या हैं?

उत्तर—मुख्यतः चार बातें हैं। श्रद्धा और प्रेमसे सत्संग करना, अपने

इष्टदेवके गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्य आदिसे परिपूर्ण ग्रन्थोंका मननपूर्वक स्वाध्याय करना, प्रेमके साथ रसका अनुभव करते हुए नाम-जप करना तथा विषयोंमें उपरति और वैराग्य होना।

९. *प्रश्न*—ध्यानके अभ्यासीकी दिनचर्या कैसी होनी चाहिये?

उत्तर—ध्यानके अभ्यासीको कभी ऐसा काम नहीं करना चाहिये जिससे उसके मनमें उद्वेग, चिन्ता, भय और शोकको वृद्धि हो। मनको केवल सांसारिक चिन्ताओंसे मुक्त ही नहीं—इष्टदेवके चिन्तन-स्मरणमें संलग्न रखना चाहिये। व्यवहारमें स्मरणकी जितनी वृद्धि होगी, उतना ही ध्यान भी अधिक लगेगा। इसलिये ध्यानके अभ्यासीकी वैसी ही दिनचर्या होनी चाहिये जिससे अधिक-से-अधिक भगवत्स्मरण हो। अपने कर्तव्यका ठीक-ठीक पालन—दीनजनोंकी सेवा, महापुरुषोंका संग, स्वाध्याय, जप, ध्यान, पूजा आदि भगवत्प्राप्तिके साधनरूप कर्मोंमें ही उसे लगे रहना चाहिये।

१०. प्रश्न—विषयोंका यथार्थ स्वरूप कैसे समझें, जिससे उनकी ओरसे मन फिर जाय?

उत्तर—किसी भी वस्तुका यथार्थ स्वरूप विचारसे ही समझमें आता है। विवेकी पुरुष विषयोंमें दुःख-ही-दुःख देखता है। विषयोंका आसक्तिपूर्वक भोग प्रत्यक्ष ही पुनर्जन्म और नरकका हेतु है। उनके भोगके समयमें भी कुछ-न-कुछ तापका अनुभव होता ही है। वे क्षणभंगुर और नाशवान् भी हैं ही। विषयोंमें फँस जानेसे उनके पंजेसे छुटकारा कठिन हो जाता है। इन सब बातोंपर विचार करनेसे इस बातका निश्चय हो जाता है कि विषय वास्तवमें दुःखरूप हैं। अबतक जगत्‌के इतिहासमें किसी भी मनुष्यको अधिक-से-अधिक विषयोंका भोग करनेपर भी उनसे सन्तोष और शान्ति नहीं मिली है। इसलिये उनकी ओरसे उपराम हो जाना ही श्रेष्ठ है।

११. प्रश्न—प्रातःकाल नींद टूटते ही और रात्रिमें सोनेके समय क्या प्रार्थना करनी चाहिये? मुख्यरूपसे क्या करना चाहिये?

उत्तर—सोने और जागनेके समय मुख्यतः भगवान्‌के नाम, गुण,

प्रभाव, रूप और लीलाका स्मरण करना चाहिये। अपने मनमें श्रीभगवान्‌के प्रति जो भाव हों, उन्हें ईमानदारीके साथ उनके चरणोंमें निवेदन करना चाहिये। अपने मनके भावसे मिलते-जुलते अर्थवाले श्लोक और पदोंका उच्चारण करना चाहिये। उनके चुनावमें अपने-अपने स्वभाव और रुचिकी ही प्रधानता होती है। श्लोक अथवा पद याद न हो तो जो जिस भाषामें बातचीत करता है वह उसी भाषामें भगवान्‌से प्रार्थना करे; क्योंकि वे तो सबकी भाषा समझते हैं।

१२.प्रश्न—रातको सोते समय भी नाम-जप होता रहे—इसके लिये क्या उपाय करना चाहिये?

उत्तर—यदि नींदके पहले खूब प्रेम और लगनके साथ नाम-जप करता रहे और जब-जब नींद टूटे, तब-तब उसको सँभालता रहे तो नाम-जप निरन्तर हो सकता है। यदि नींद टूटनेपर नाम-जप होता न मिले तो हृदयमें बड़ा पश्चात्ताप और वेदना होनी चाहिये और सच्चे हृदयसे भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये कि 'हे प्रभो! ऐसी कृपा करो कि एक क्षणके लिये भी कभी तुम्हारे नामका ताँता न टूटे।' सच्ची प्रार्थना हो और हृदयमें उत्साह हो तो सोते समय भी नाम-जप हो सकता है।

१३.प्रश्न—मैं सन्ध्या करना नहीं जानता। क्या इसके बदलेमें ध्यान अथवा नाम-जप किया जा सकता है?

उत्तर—प्रत्येक यज्ञोपवीतधारी द्विजातिके लिये सन्ध्या करना अनिवार्य है। सन्ध्या न करनेसे पाप होता है। अतः सन्ध्याको किसी-न-किसी प्रकार सीख ही लेना चाहिये। जबतक पूरी सन्ध्या याद नहीं हो जाती तबतक केवल गायत्रीमन्त्रसे प्राणायाम, आचमन, मार्जन, सूर्योपस्थान, जप आदि मुख्य-मुख्य क्रिया तो कर ही लेनी चाहिये। यद्यपि ध्यान और जपकी महिमा अनन्त है, फिर भी उनके आश्रयसे नित्यकर्मका लोप नहीं होना चाहिये।

१४.प्रश्न—उपवास अथवा फलाहारके दिन भी बलिवैश्वदेव करना चाहिये क्या? कौन-सा फलाहार उत्तम है? फलाहारके दिन कुत्ते-कौए आदिके लिये क्या करना चाहिये?

उत्तर—उपवासके दिन बलिवैश्वदेवरूप यज्ञ मानसिक करना चाहिये। फलाहारके दिन फलसे मनुष्य जो भोजन करता है, उसीके द्वारा यह यज्ञ करना चाहिये। सबसे उत्तम तो निराहार रहना ही है। दूसरा नम्बर स्वल्प परिमाणमें दुग्ध लेनेका है। तीसरे नम्बरमें सूर्यकी किरणोंसे पके हुए फलोंका है। हलवा, पूरी, पेड़े आदि फलाहारकी वर्तमान प्रणाली तो चौथी श्रेणीकी है; न करनेसे यह भी अच्छी ही है। कौए, कुत्ते, गाय आदिको भी वही वस्तु देनी चाहिये जो स्वयं खाये।

१५.*प्रश्न*—दूसरोंके यहाँ निमन्त्रणमें जानेपर बलिवैश्वदेव नहीं कर सकते। ऐसे अवसरोंपर क्या करना चाहिये?

उत्तर—ऐसे अवसरोंपर मानसिक बलिवैश्वदेव कर लेना चाहिये।

१६.*प्रश्न*—'***होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावै साखा॥***' यह बात सिर्फ प्रारब्ध-भोगमें ही लागू है अथवा परमार्थ-पथकी उन्नति और अवनतिमें भी? इसका असली भाव क्या है?

उत्तर—यह बात मुख्यरूपसे प्रारब्ध-भोगमें ही लागू है। परमार्थ-पथकी उन्नति होती है साधकके उत्साह, लगन और साधन-सम्बन्धी तत्परतासे तथा उसके अहंकार, आसक्ति, आलस्य, प्रमाद आदिसे अवनति होती है। इसका असली भाव यह समझना चाहिये कि जो कुछ सुख-दुःख मिला अथवा आगे मिलेगा, उसके सम्बन्धमें सोच-विचार न करके उसे भगवान्‌के विधान और प्रारब्धपर छोड़ दे तथा वर्तमान कालमें भगवान्‌के शरण होकर अपनेको अवनतिसे बचाने और उन्नतिके पथपर ले जानेके लिये भरपूर चेष्टा करे।

१७.*प्रश्न*—सद्‌गुरुकी प्राप्तिके लिये साधकको क्या करना या करते रहना चाहिये?

उत्तर—साधकको चाहिये कि सदाचारका पालन करते हुए नित्य आर्तभावसे भगवान्‌के चरणोंमें प्रार्थना करे कि आप मुझे शीघ्र संत सद्‌गुरुसे मिलाइये। स्मरण रहे कि सच्ची और उचित प्रार्थना कभी निष्फल नहीं होती। प्रार्थीके भावानुसार कुछ विलम्ब अवश्य हो सकता है।

१८.प्रश्न—वास्तवमें जप और ध्यान किसे कहना चाहिये?

उत्तर—वास्तवमें सच्चा जप और ध्यान वही है, जो श्रद्धा और प्रेमसे हो। श्रद्धा और प्रेमके बिना जप और ध्यान साधारण फलदायक हैं।

१९.प्रश्न—साधक दूसरोंकी उन्नतिके लिये चेष्टा करे या नहीं? होम करते हाथ जलनेकी नौबत तो नहीं आती?

उत्तर—इसमें होम करते हाथ जलनेकी नौबत नहीं आती। साधक जिस साधनसे अपना परम कल्याण समझता है वह साधन दूसरे भी करें और उसके द्वारा लाभ उठावें, ऐसी इच्छा और चेष्टा उसकी होनी चाहिये। उसके मनमें ऐसा दृढ़ निश्चय होना चाहिये कि यदि दूसरोंका कल्याण-साधन करनेमें मेरी हानि भी हो जाय तो कोई परवा नहीं। वास्तवमें तो दूसरेका भला चाहनेवालेका पतन हो ही नहीं सकता। गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—**'न हि कल्याणकृत् कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति॥'** (६। ४०) 'प्यारे अर्जुन! कल्याणके किसी भी साधककी कभी किंचिन्मात्र भी दुर्गति नहीं हो सकती।' इसलिये अपने कल्याणके साथ-साथ दूसरोंके कल्याणकी भी चेष्टा करनी चाहिये।

२०.प्रश्न—साधकको अपने ही सुधारमें लगे रहना चाहिये, क्या यह ठीक है?

उत्तर—यह ठीक है कि साधकको अपनी उन्नतिमें तो निरन्तर तत्पर रहना ही चाहिये, दूसरोंके हितका भी ध्यान रखना चाहिये। दूसरोंके कल्याणकी चेष्टा करनेपर कहीं उसके चित्तमें इस बातका अहंकार न हो जाय कि मैंने अमुकका हित कर दिया। इसलिये साधक दूसरोंका हित तो करे अवश्य, परन्तु दूसरोंके सुधारके साथ-साथ अपने सुधारपर निरन्तर दृष्टि रखे। जो अपना सुधार नहीं करता, भला वह दूसरोंका सुधार कब कर सकता है।

२१.प्रश्न—कभी-कभी मेरे इष्टदेवके चित्रसे अधिक सुन्दर चित्र जब निकलते हैं, तब चित्त उनके लिये ललच जाता है। ऐसी स्थितिमें क्या करना चाहिये? नये चित्रके अनुसार ध्यान करना चाहिये अथवा पुरानेका ही? ऐसी अवस्थाका यथार्थ मर्म क्या है?

उत्तर—जिस समय आपके पासवाले चित्रसे अधिक सुन्दर चित्र आपके पास आता है, उस समय आपको भगवान्‌की विशेष कृपाका अनुभव करना चाहिये। भगवान्‌ने आपपर कृपा करके एक और भी नयनमनोहारी झाँकी आपके सामने प्रकट कर दी। आप उसी रूपमें अपने इष्टदेवका ध्यान कीजिये और उनकी विभिन्न लीलाओंको देखिये। केवल इतना ही नहीं यदि श्रीकृष्णका ध्यान करते समय श्रीरामका अथवा श्रीरामका ध्यान करते समय श्रीविष्णुका श्रीविग्रह आपके ध्यानमें प्रकट हो जाय तो भी उसे अपने भगवान्‌की विशेष कृपा समझकर प्रेमसे पूजा कीजिये और आनन्दसे गद्‌गद हो जाइये। सब अपने इष्टदेवके ही तो रूप हैं। उनमें भेद-भाव करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

२२.प्रश्न—परब्रह्म परमात्मामें द्वैत और अद्वैतके भेदसे निर्गुण-निराकार-साकार और सगुण-निराकार-साकारके चार-चार प्रकार हो जाते हैं। उनका यथार्थ मर्म स्पष्ट कीजिये?

उत्तर—आपने अपने प्रश्नमें जो चार-चार प्रकारके भेदोंका उल्लेख किया है, वह किस प्रसंगसे लिया है? वहाँ वह जिस भावसे लिया गया हो, उसको वहींसे समझना चाहिये। वास्तवमें निर्गुण, सगुण, निराकार, साकार—सब-के-सब भगवान्‌के ही स्वरूप हैं। एक ही लीलामय भगवान् लीलाके लिये विभिन्न साधकोंके सामने भिन्न-भिन्न रूपसे प्रकट होते हैं, उनके सम्बन्धमें इतना जानना ही पर्याप्त है कि वे सब भगवान्‌के ही रूप हैं।

२३.प्रश्न—एक बार नखसे शिखतक ध्यान कर लेनेके बाद बार-बार वही दोहराना चाहिये या और कुछ करना चाहिये?

उत्तर—नियत समयतक ध्यानके लिये बैठनेपर एक बार तो पूरे नख-शिखका चिन्तन कर लेना चाहिये। रुचि और प्रेम हो तो बार-बार उसे दोहराना चाहिये। शेषमें रुचिके अनुसार मुखारविन्द या चरणारविन्द किसी एकपर मनको स्थिर कर देना चाहिये! ध्यान ठीक-ठीक न लगे तो अपने इष्टदेवके गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्य, चरित्र आदिका स्मरण और

उनकी कृपा, प्रेमका अनुभव करना चाहिये। उनकी विभिन्न लीलाओंका दर्शन भी कर सकते हैं और समय, रुचि तथा प्रेरणाके अनुसार उनकी मानसिक सेवा भी कर सकते हैं। प्रार्थना और मानस-पूजाके लिये भी यही उपयुक्त अवसर है।

२४. *प्रश्न*—मेरा मन स्वाध्यायमें विशेष लगता है और जपमें कम। मुझे नाम-जप करना चाहिये अथवा स्वाध्याय? उत्तम कौन है?

उत्तर—जप और स्वाध्याय दोनों ही उत्तम हैं। जैसे शरीर-पोषणके लिये अन्न और जल दोनोंकी आवश्यकता है, वैसे ही पारमार्थिक उन्नतिके लिये जप और स्वाध्यायकी है। स्वाध्यायसे जपमें मन लगता है और जपसे स्वध्यायकी धारणा होती है। दोनों एक-दूसरेके विरोधी नहीं हैं, सहायक हैं। इसलिये दोनों ही करने चाहिये। जिसमें मन न लगे, उसमें लगाया जाय।

२५. *प्रश्न*—माया और प्रकृति क्या हैं? उनमें कितना अन्तर है? भक्त और ज्ञानीकी दृष्टिसे इनके स्वरूप क्या हैं?

उत्तर—वेदान्ती लोग माया और प्रकृतिको एक ही मानते हैं और उसीके द्वारा जिज्ञासुको सृष्टिकी व्यवस्था समझाते हैं। वे मायाका स्वरूप काल्पनिक मानते हैं। भक्तकी दृष्टिमें प्रकृति सत्य है। वही सृष्टिका उपादान कारण है। उसमें फँसा देनेवाले अंशको वे माया मानते हैं। असलमें भक्तकी दृष्टि तो भगवान्पर ही रहती है, वह माया और प्रकृतिको क्यों देखने लगा?

२६. *प्रश्न*—शुद्ध साक्षी किसे कहते हैं?

उत्तर—सम्पूर्ण दृश्यमान जगत्के भाव और अभावको, सृष्टि और प्रलयको प्रतीति और बाधको जो जानता है, किसी भी कर्म अथवा अकर्मका कभी भी कर्ता, भोक्ता नहीं बनता और जो सर्वथा विकाररहित है, वह 'तत्' और 'त्वम्' पदका लक्ष्य कूटस्थ आत्मा ही साक्षी है।

२७. *प्रश्न*—प्रपंच क्या है? उसकी आत्यन्तिक निवृत्ति कैसे हो?

उत्तर—जो कुछ भाव अथवा अभावके रूपमें दृश्यमान जगत् है,

उसको प्रपंच कहते हैं। उसकी आत्यन्तिक निवृत्ति होती है ज्ञानमार्गद्वारा ब्रह्मका तत्त्व जाननेसे अथवा भक्तिके द्वारा भगवान्‌की कृपा प्राप्त करके भगवान्‌के स्वरूपका साक्षात्कार हो जानेपर। तात्पर्य यह है कि परमात्माकी प्राप्तिसे ही प्रपंचकी आत्यन्तिक निवृत्ति होती है।

२८. प्रश्न—क्या भक्तोंपर भी प्रारब्धका प्रभाव रहता है?

उत्तर—भक्तोंके भी शरीरका स्वास्थ्य-अस्वास्थ्य, धनका लाभ और विनाश आदि प्रारब्धके अनुसार होते हैं। परंतु वे प्रारब्धके अनुसार होनेवाली घटनाओंसे प्रभावित नहीं होते। उनकी दृष्टि सर्वदा भगवान्‌पर ही लगी रहती है, वे सब घटनाओंमें उनकी लीला ही देखते रहते हैं; इसलिये वे प्रारब्धको हटानेकी इच्छा भी नहीं करते। साधारण पुरुषोंकी अपेक्षा यही उनकी विलक्षणता है।

२९. प्रश्न—यदि नाम-जपके स्थानमें ध्यान ही किया जाय तो कैसा? नाम-जप तो छूट जायगा न?

उत्तर—नाम-जप ध्यानका विरोधी नहीं है। इसलिये ध्यानके समय भी नाम-जप करना चाहिये। उस समय न हो सके तो ध्यान टूटनेपर करना चाहिये। यदि ध्यान कभी टूटे ही नहीं तो फिर बात ही क्या है? तात्पर्य यह है कि जबतक व्यवहार है, तबतक नाम-जप नहीं छोड़ना चाहिये।

३०. प्रश्न—मैं शामके समय अपने मनको वृन्दावनमें ले जाकर सखियोंके साथ भगवान्‌के नौका-विहारका, फिर मखमली फर्शपर आनेका, सेवा-कुंजमें विराजनेका, युगल सरकारकी एकताका और फिर युगल सरकारका ध्यान-सेवन करता हूँ। तदनन्तर इष्टमन्त्रका जप करता हूँ। इसमें कोई त्रुटि हो तो बतलायें?

उत्तर—आपकी इस ध्यान-प्रणालीमें कोई त्रुटि नहीं मालूम होती। आप खूब प्रेमसे अपने इष्टदेवके ध्यान और जपको और भी बढ़ायें।

आपके प्रश्नोंके उत्तर संक्षेपमें ही देनेका प्रयास किया गया है। सुविधाके लिये आपके भावोंकी रक्षा करते हुए प्रश्नोंकी भाषा कुछ

सुधार ली गयी है। आप उत्तरोंको ठीक-ठीक हृदयंगम कर सकें, इसलिये प्रश्न भी साथ-साथ दे दिये गये हैं। आपके चौथे प्रश्नोंको द्वितीय प्रश्नमें ही अन्तर्भूत कर दिया गया है।

शेष भगवत्कृपा।

---

[२४]

आपका कृपापत्र प्राप्त हुआ। समाचार जाने। आपकी शंकाओंका समाधान प्रश्नोंकी संख्याके अनुसार किया जाता है।

(१) जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य बलिवैश्वदेव करते हैं और देवता, ऋषि, पितर आदिके लिये पाँच ग्रास निकालते और अग्निमें आहुति देते हैं, वैसे शूद्र भी कर सकते हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि यज्ञोपवीतधारी द्विजातिको तो सब कर्म मन्त्रोच्चारणपूर्वक करने चाहिये, परन्तु शूद्र मन्त्रोंका उच्चारण नहीं कर सकता। ऋषि-मुनियों और शास्त्रोंने उनके लिये यह विशेष सुविधा कर दी है कि द्विजातियोंको जो फल मन्त्रोच्चारणपूर्वक कर्म करनेसे मिलता है, वही उन्हें बिना मन्त्रके भी मिल जाता है। मेरे पहलेके लेखोंमें भी संक्षेपसे इस बातका शायद संकेत होगा। यदि लेखोंमें यह बात न भी आयी हो तो समझ लेनी चाहिये।

(२) पितरोंके लिये श्राद्ध करना अत्यन्त आवश्यक है। यह आश्विनके कृष्णपक्षमें तो होता ही है, प्रत्येक महीनेकी मृत्यु-तिथिपर भी होता है। अपने पिता, पितामह आदिकी मृत्यु जिस पक्षकी जिस तिथिको अथवा जिस मासकी जिस तिथिको हुई हो उस दिन श्राद्ध कर सकते हैं। श्राद्धमें ब्राह्मणोंको ही भोजन करानेका नियम है। यदि श्राद्धके दिन ब्राह्मण-भोजन न करा सकें तो ब्राह्मण-भोजनका फल तो कैसे मिलेगा? पितरोंके उद्धारके लिये जप-पूजन आदि जो कुछ भी किया जाय, विधिपूर्वक होना चाहिये। सकाम कर्म विधिहीन होनेपर फलप्रद नहीं होते। जप तो यदि विधिपूर्वक न हो सके तो

चलते-फिरते, उठते-बैठते कर लेनेमें भी कोई हानि नहीं है। यदि पितरोंके लिये किसी ब्राह्मणसे महामन्त्रादिका जप करायें तो पहलेसे दक्षिणाकी संख्या नियत न करके अन्तमें श्रद्धानुसार दे दें। यदि ऐसा सम्भव न हो तो दक्षिणा नियत करके भी करा सकते हैं। इसका भी फल अवश्य मिलता है।

(३) इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रारब्धका फल अवश्य भोगना ही पड़ता है। ग्रहोंकी स्थितिसे उसकी कुछ सूचना मिल जाती है। उनका प्रभाव भी भगवान्‌के विधानके अनुसार ही पड़ता है। ग्रहोंकी शान्ति और जपसे यदि तीव्र प्रारब्ध न हुआ तो अरिष्टकी निवृत्ति भी हो सकती है; परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि कब कौनसे ग्रह-जप, शान्तिकर्म आदिसे शान्त हो जायँगे और कब नहीं होंगे। ज्ञानीको प्रारब्ध क्यों भोगना पड़ता है, यह एक दूसरा प्रश्न है। ज्ञानीके शरीरपर प्रारब्धका प्रभाव पड़ता है, परन्तु उससे ज्ञानीको सुख अथवा दुःखरूप विकार नहीं होता। जैसे साधारण पुरुष शरीरमें रोग होनेपर व्याकुल हो जाते हैं, वैसी व्याकुलता ज्ञानीमें नहीं होती। वह तो शरीर और समस्त दृश्यमान जगत्‌को प्रतीतिमात्र देखता है। उसके लिये प्रारब्ध और उसका फल प्रतीतिमात्र है। इसलिये वह न उन्हें चाहता है और न हटानेकी ही इच्छा करता है; इसीसे उसके शरीरपर प्रारब्धका प्रभाव पड़ता है। अज्ञानी पुरुष प्रारब्धके फल सुखसे राग करता है और दुःखसे द्वेष। इसीसे वह दुःखको हटानेकी चेष्टा करता है। यदि प्रारब्ध शिथिल हुआ तब तो उसकी चेष्टा सफल हो जाती है, अन्यथा चेष्टा करनेपर भी प्रारब्धका फल भोगना ही पड़ता है। आशा है, इतनेसे आपकी शंकाका समाधान हो जायगा।

(४) हम वर्णव्यवस्थाको जन्म और कर्म दोनोंसे मानते हैं। जो दोनों प्रकार ब्राह्मण है, वह श्रेष्ठ ब्राह्मण है। जो जन्मसे ब्राह्मण है, परन्तु कर्मसे क्षत्रिय—उसको क्षत्रिय-ब्राह्मण समझना चाहिये। जो कर्मसे वैश्य है, उसे वैश्य-ब्राह्मण। धर्मशास्त्रमें देव-ब्राह्मणसे लेकर चाण्डाल-ब्राह्मण और राक्षस-ब्राह्मणतकका वर्णन है। अन्य वर्णमें

उत्पन्न होकर अन्य वर्णका कर्म करनेसे कर्मसंकर हो जाता है। शुद्ध वर्ण तो वही है, जो जन्म और कर्म दोनोंसे ही शुद्ध है। आचरण ब्राह्मणके सदृश होनेपर भी जो जन्मसे ब्राह्मण नहीं है तो वह ब्राह्मण नहीं हो सकता।

यदि पहले कोई दबावके कारण क्षत्रियसे मुसलमान हो गया हो और अब वह अपनेको क्षत्रिय मानकर क्षत्रियोचित कर्म करता है, तो किसीको कोई अधिकार नहीं कि वह उसे वैसा करनेसे रोके। उसकी मान्यतापर किसीका क्या अधिकार हो सकता है? इतनी बात अवश्य है कि जो लोग उसे अपनी जातिमें सम्मिलित नहीं करते, उनका वैसा करना भी अनुचित नहीं है? क्या पता कि वह पुरुष अपनी मान्यतापर दृढ़ रहेगा या नहीं। ऐसी कई घटनाएँ हुई हैं। जब लोग अपनेको हिंदू मानकर शुद्ध हुए—शादी-विवाह की, बच्चे पैदा किये और अन्तमें सबको लेकर फिर विधर्मी बन गये। इसलिये ऐसे लोगोंको जो जातिमें सम्मिलित नहीं करते, वे भी दोषी नहीं हैं। उनका वह काम भी एक प्रकारसे ठीक ही है।

(५) ऋतुकालमें चौथे दिन स्त्री-सहवासकी जो बात कही गयी है, वह स्त्रीकी अत्यन्त तीव्र इच्छा होनेपर है। वैसे छठे दिनका ही उत्तम समझना चाहिये। शास्त्रमें ऋतुकालके सोलह दिन गर्भाधानके योग्य बतलाये हैं। उनमें विषम रात्रियोंमें गर्भस्थिति होनेसे कन्या होती है और सम रात्रियोंमें होनेसे पुत्र। इस प्रसंगमें यह भी कहा गया है कि सोलह रात्रियोंमेंसे अन्तिम रात्रियाँ ही श्रेष्ठ हैं। एकादशी, अमावास्या, पूर्णिमा, सूर्य-ग्रहण आदिका भी निषेध है। इन सबका तात्पर्य यह है कि स्त्री-सहवास कम-से-कम और नियमितरूपमें ही होना चाहिये।

(६) इसमें कोई सन्देह नहीं कि भगवान्से किसी भी बातकी कामना नहीं करनी चाहिये। बच्चा अपने माता-पितासे अपने अभावकी पूर्ति चाहता है अवश्य; परन्तु जो नहीं चाहता, उसके अभावपर माता-पिता अधिक ध्यान देते हैं। इसलिये सबसे श्रेष्ठ यही है कि भगवान्से कुछ भी माँगा न जाय। भजनके लिये भी रोग-निवृत्तिकी प्रार्थना पहले

नम्बरकी बात नहीं है। उचित तो यह है कि भगवान्‌के विधानमें सन्तुष्ट रहकर रोग-शोककी अवस्थाओंमें भी उनकी कृपाका अनुभव करते रहना चाहिये। उन्होंने जब रोग दिया है, तब कुछ-न-कुछ सोच-समझकर ही तो दिया होगा। फिर उनके ज्ञान, कृपा और न्याय-शीलताको स्वीकार न करके उनकी देनको लौटाया क्यों जाय? परन्तु यदि ऐसी ऊँची मानसिक स्थिति न हो तो भजनके लिये आरोग्यकी प्रार्थना करना बुरा नहीं है।

(७) मुख्य बात तो यह है कि यदि राजा कोई अनुचित और अन्यायपूर्ण काम करनेको कहता है, तो उसे स्वीकार ही नहीं करना चाहिये। अपने स्वार्थके लिये किसी भी अन्यायपूर्ण कार्यको कर्तव्यके अन्दर स्थान नहीं देना चाहिये। कोई नौकरी सर्वथा प्रारब्धाधीन नहीं होती। लाभ-हानि तथा सुख-दुःखकी प्राप्ति प्रारब्धके अनुसार होती है और वह किसी-न-किसी निमित्तसे होती है। इसके लिये प्रारब्धको दोष न देकर उसपर और विश्वास करना चाहिये तथा जो कुछ लाभ-हानि, सुख-दुःख प्रारब्धमें बदा होगा वह तो मिलेगा ही, ऐसा निश्चय करके अनुचित कर्मसे अलग हो जाना चाहिये। ***'यथा राजा तथा प्रजा'*** बननेकी नीति तो आत्मबलके अभावकी—कमजोरीकी बात है। इसको औचित्यका रूप कभी नहीं देना चाहिये।

(८) पति-पत्नीका एक शय्यापर शयन करना शास्त्रविरुद्ध नहीं है। यदि ऐसा करना शास्त्रविरुद्ध हो तो स्त्री-सहवास ही कैसे बन सकता है; किन्तु संयमकी दृष्टिसे प्रतिदिन ऐसा नहीं करना चाहिये। कभी-कभी कुछ समयके लिये ऐसा करनेमें कोई आपत्ति नहीं है। स्त्रीको अप्रसन्न नहीं करना चाहिये, परन्तु जहाँतक हो दृढ़ताके साथ अधिक-से-अधिक संयमका पालन भी करना चाहिये।

(९) जो कर्मचारी राजाका काम ईमानदारीके साथ करता है और प्रजाको भी प्रसन्न रखता है, वह अपना कर्तव्य-पालन तो करता है; परन्तु यदि वह प्रजासे किसी प्रकारका इनाम लेता है, तो उसे खुले-

चौड़ेमें सबके सामने लेना चाहिये। किसीसे भी छिपाकर लेना घूसखोरी ही है। इसे नेक कमाई नहीं कहा जा सकता।

(१०) चित्त-निरोधके लिये जिस सुषुम्ना नाड़ीका वर्णन किया गया है, वह वैद्योंकी जानकारीमें आनेवाली सुषुम्ना नाड़ीसे सम्बन्ध तो अवश्य रखती है, परन्तु है उससे भिन्न। वह हृदयसे लेकर मस्तकपर्यन्त एक ज्योतिर्मय सूत्रके रूपमें है और उसमें परमात्माका ध्यान करनेसे बड़े आनन्दका अनुभव होता है। इसके अतिरिक्त एक सुषुम्ना-स्वर भी है। जब इडा और पिंगला बायें और दायें दोनों नासिका-छिद्रोंसे समानरूपसे श्वास-प्रश्वास चलने लगता है, तब उसे सुषुम्ना-स्वर कहते हैं। ब्राह्ममुहूर्त और सन्ध्याके समय कभी ऐसा स्वाभाविक ही हो जाता है। यह स्वर चलनेपर ध्यानमें चित्त बहुत जल्दी लगता है।

आपके प्रश्न स्वाभाविक और कामके हैं। इसमें कोई अपराधकी बात नहीं है। उत्तर आपके प्रश्नोंकी संख्याके अनुसार अलग-अलग दिये गये हैं। उत्तरके लिये टिकट भेजनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। शेष भगवत्कृपा।

[२५]

प्रेमसहित राम-राम। आपका साधन किस तरह चलता है? काम, क्रोध, लोभ, मोहका वेग कम होकर श्रीपरमात्मादेवमें जल्दी अनन्य-प्रेम होना चाहिये। आपको हर समय विचारते रहना चाहिये कि जल्दी कल्याण किस तरह हो। यदि ऐसा मौका भी बिना भगवत्प्राप्तिके चला जायगा तो फिर ऐसी तजबीज बैठनी बहुत मुश्किल है। आपने अपने उद्धारकी चेष्टाके लिये आफिसका काम छोड़ा था, किन्तु अभीतक आपका ऐसा तेज साधन नहीं हुआ, जिसके बलसे आपको जल्दी भगवत्प्राप्ति हो जाय। आपका साधन ढीला तो होना ही नहीं चाहिये, बल्कि दिन-पर-दिन अधिक तेज होना चाहिये। आपको किस बातकी जरूरत है? आपका साधन तेज होनेमें किसलिये रुकावट हो रही है? भगवत्प्राप्तिके लिये आपकी उत्कण्ठा जोरसे क्यों नहीं होती? यदि

इसी अवस्थामें प्राण चले जायँ तो कितनी हानि है? प्राण चले जानेके बाद आपका क्या उपाय रह जायगा? आपको इन बातोंपर विचार करना चाहिये और बहुत जल्दी कल्याणका उपाय कर लेना चाहिये। अभी नहीं करेंगे तो फिर कब करेंगे? दिन तो बीते जा रहे हैं। गये हुए दिन वापस नहीं आ सकते।

[२६]

प्रेमसहित राम-राम बचना। आपने लिखा कि आपकी मायाको आप ही जानें, सो इस तरह नहीं लिखना चाहिये। आपने पूछा कि श्रीसच्चिदानन्दघन भगवान्का ध्यान करते हुए श्रीसच्चिदानन्दमय ही हो जायँ; शरीर तथा संसारका कुछ भी ज्ञान न रहे—ऐसा ध्यान कब होगा, सो ठीक है। जब श्रीपरमात्मादेवके नामका जप करते-करते रोमांच और अश्रुपात होने लग जायँगे, भगवान्में पूर्ण प्रेम हो जायगा, उस दिन आपके लिखे मुताबिक श्रीपरमात्मादेवका ध्यान होना कुछ भी बड़ी बात नहीं है। इस प्रकारके ध्यान रहनेका उपाय पूछा, सो सत्संग और भजनकी विशेष चेष्टा करनी चाहिये तथा शास्त्रोंका विचार भी करना चाहिये। हो सके तो श्रीगीताजी भाव और अर्थसहित कण्ठस्थ कर लेनी चाहिये और काम करते समय भी भगवान्के प्रेममें मग्न होते हुए उनके नामका जप और स्वरूपका ध्यान करते हुए ही काम करनेका अभ्यास डालना चाहिये। इस भाँति अभ्यास तेज होनेपर ध्यान अटल हो सकता है। फिर श्रीसच्चिदानन्दका ध्यान कभी भी छूट सकता नहीं। जबतक ध्यान अच्छी तरह नहीं होता है, तभीतक ध्यानका साधन कुछ कठिन मालूम देता है।

आपने लिखा कि बहुत बार ध्यानकी बातें सुनी जाती हैं; किन्तु बड़े पश्चात्तापकी बात है कि अभीतक ऐसा ध्यान हुआ नहीं, सो ठीक है। अभ्यास करना चाहिये। अभ्यास करनेसे हो सकता है। ध्यानकी बातें सुननेके समय एकाग्रचित्त होकर सुनना चाहिये और उसके बाद ध्यानमें मग्न रहते हुए ही मार्गपर चलना चाहिये। चाहे जो कुछ हो,

ध्यान नहीं छूटना चाहिये। इस तरहकी स्थिति नित्य अभ्यास करनेसे हो सकती है।

किसी समय थोड़ी चेष्टासे भी ध्यान हो जाता है और किसी समय अधिक चेष्टा करनेपर भी नहीं होता, सो ठीक ही है। जब वृत्तियाँ सात्त्विक होती हैं तब तो थोड़ी चेष्टासे भी ध्यान हो जाता है; किन्तु जब राजसी होती हैं तब अधिक चेष्टा करनी पड़ती है और जब तामसी वृत्तियाँ होती हैं उस समय तो भगवान्‌का ध्यान होना ही मुश्किल है। इसलिये वृत्तियोंको निरन्तर सात्त्विक रखनेके लिये यज्ञ, दान, तप आदि सात्त्विक कर्म तथा पूजा-पाठ, भजन-सत्संग आदि करनेका प्रयत्न करना चाहिये। उत्तम कामसे वृत्तियाँ शीघ्र ही सात्त्विक हो सकती हैं। इसके सिवा इसका और कोई उपाय है नहीं।

जपकी चेष्टा होती लिखी, सो ठीक है। किसी समय आनन्दमयका ध्यान बहुत उत्तम होता है, सो वह भजन-सत्संगका ही प्रताप है। आपने लिखा कि मेरे आचरण बहुत खराब हैं; किन्तु भगवान् पतितपावन हैं, इसीसे धीरज है, सो आनन्दकी बात है। पत्रमें मेरी बड़ाई नहीं लिखनी चाहिये, आपको इसके लिये पहले भी मनाही की थी।

[२७]

× × × तुम्हारे अब ऐसा क्या काम है, जिसके कारण तुम भगवत्प्राप्तिके लिये कटिबद्ध होकर नहीं लगते हो? भाई! यदि इस समय शरीर छूट जाय तो तुम विचार करो। तुम्हारे ऐसा कौन-सा साधन बन गया है, जिसके कारण तुम्हारी चेष्टा ढीली है। तुम किसके भरोसे निश्चिन्त-से हो रहे हो? यदि कहो कि भरोसा तो श्रीपरमात्मादेवका ही है; सो भाई! यह तुम्हारी समझकी भूल है। तुमने श्रीपरमात्मादेवकी बातें तो कुछ भी सुनी नहीं, तब फिर यह कहनेमात्रके भरोसेसे कैसे काम चल सकता है? तुमको विचार करना चाहिये। भाई! तुमने मनुष्यका शरीर लेकर क्या किया? संसारमें लोग कहते हैं, ये इनके

मित्र हैं; पर भाई! हमारा मित्रपना भगवान्‌के भजनमें बाधा देनेवाला थोड़े ही है! तुम हमारे मित्र हो तो फिर मित्रकी बात तो माननी चाहिये। तुम्हें कई बार लिख दिया कि श्रीगीताजी पढ़नी चाहिये। भाई! यदि रोज दो श्लोक अर्थसहित कण्ठस्थ कर लिये जायँ और इस प्रकार बारह महीनेमें पूरी गीता अर्थसहित कण्ठस्थ करनेका नियम कर लिया जाय तो क्या तुम गीताजी याद नहीं कर सकते हो? परन्तु हो कैसे, इस तुच्छ हृदयकी दुर्बलताको छोड़ो तब न। भाई! तुममें इतनी कायरता कहाँसे आयी? तुम्हें यह कायरता शोभा नहीं देती। तुमने किसलिये इतनी कमजोरी धारण कर ली है? साधनके लिये तुम्हें अपने मनमें उत्तेजना क्यों नहीं होती है? तथा सत्संगमें पहलेसे अधिक प्रेम होना चाहिये, सो क्यों नहीं होता? सत्संगका प्रभाव फिर कब जानोगे? समय तो बीता जा रहा है। जल्दी चेतना चाहिये।

[२८]

······की बातें सुननेसे उनकी बहुत ऊँची कोटि अनुमान की जाती है। किन्तु······ से भी आपका साधन तेज समझा जाता है; परन्तु अब ढीला नहीं होना चाहिये। बहुत समय हो गया। समय तो बीतता ही जा रहा है। गया हुआ समय फिर आता नहीं। इसलिये अब तो कटिबद्ध होकर ऊँचे-से-ऊँचे साधनके परायण हो जाना चाहिये, एक पलक भी नीचे साधनमें नहीं बिताना चाहिये।······के अनुसार साधन होना चाहिये। सम्पूर्ण बल साधनपर लगा देना चाहिये। ध्यानमें ऐसा मस्त हो जाना चाहिये कि भले ही कोई शरीरका नाश कर दे, पर कुछ भी मालूम न हो। श्रीसच्चिदानन्दघनके स्वरूपमें ऐसी मग्नता होनी चाहिये कि फिर इस शरीरकी कुछ भी सुध-बुध न रहे। सारे संसारको नाशवान्, क्षणभंगुर और अनित्य समझकर उस नित्य बोधस्वरूप परमानन्दमें मग्न हो रहना चाहिये।

[२९]

आप किसलिये कटिबद्ध होकर साधनमें नहीं लग रहे हैं? इस शरीरसे उत्तम लाभ न लेकर मिथ्या सांसारिक भोगोंके तुच्छ आनन्दमें किसलिये अपने अमूल्य जन्मको धूलमें मिला रहे हैं? आपका शरीर भी आपके साथ नहीं जायगा, फिर और चीजें तो जा ही कैसे सकती हैं? उसके बाद आपके ये रुपये किस काम आवेंगे? एक भगवान्‌के सिवा आपकी और कोई भी सहायता करेगा नहीं। यदि आप तुच्छ सांसारिक आराममें फँसकर अपने पारलौकिक आनन्दको धूलमें मिला देंगे तो पीछे बहुत पश्चात्ताप करना पड़ेगा। अब आपको चेतकर चलना चाहिये। ऐसा समय पुनः मिलना बहुत ही कठिन है। आप उस परम आनन्दके मर्मको नहीं जानते, नहीं तो इस शरीरके तुच्छ भोगोंमें कभी नहीं रमते।

[३०]

संसार और शरीरको नाशवान् देखनेसे भगवान् बुखारमें अधिक याद रह सकते हैं। भगवान्‌के साथ प्रेम हुए बिना बहुत ही दुर्गति हुआ करती है—इस तरह समझकर भगवान्‌में प्रेम करना चाहिये। नहीं तो बहुत ही मुश्किल है। शरीर बीत जायगा तब वह तुम्हारे किस काम आवेगा। शरीर तो जरूर नाश होगा ही। इसको बचा रखनेका कोई उपाय नहीं है। इसलिये जबतक यह मिट्टीमें नहीं मिल जाता, तबतक इससे जो कुछ लाभ लेना हो सो तुरंत ले लेना चाहिये। इस प्रकार विचार करनेसे भजन अधिक हो सकता है। जो कुछ लाभ इस शरीरसे उठाना हो, वह प्राण निकले उससे पहले ही उठा लेना चाहिये। यह शरीर तो मिट्टी ही है, अतः तुरंत मिट्टीमें मिलनेवाला है। जल्दी चेष्टा कर लेंगे तो काम बन जायगा, नहीं तो मुश्किल ही है।

[३१]

आपने इतना समय बिता दिया! लगभग पूरी आयु ही बीत गयी। आपको मनुष्य-शरीर पाकर कुछ विचार करना चाहिये था। पर जो

हुआ सो हुआ; अब भी चेतना चाहिये। आप जिस कामके लिये आये थे, उस काममें आपको तत्पर होना चाहिये। अब भी यदि नहीं चेतेंगे तो फिर कब चेतेंगे? एक भगवान्‌के सिवा कोई भी आपका नहीं है। शरीर भी आपका नहीं है। संसारमें मनुष्य-शरीर पाकर भी यदि भगवद्दर्शन हुए बिना चले जायँगे तो बहुत ही पश्चात्ताप करना होगा और फिर पश्चात्ताप करनेसे कुछ भी गरज सरेगी नहीं। अतः अब तो इस शरीरको एकदम ही भगवान्‌के अर्पण कर देना चाहिये। अब तो इस शरीरसे परम लाभ उठाना चाहिये। मनुष्य-जन्मका फल पाना चाहिये। आप किसलिये नहीं चेतते हैं? एक पलक भी दूसरे काममें क्यों बिताते हैं? किसलिये फालतू बातोंमें समय बिताते हैं? श्रीभगवान्‌के भजन, ध्यान, सत्संगके सिवा जो कुछ भी बात की जाती है, वही फालतू बात है और भगवान्‌की प्राप्तिके सिवा जो कुछ भी समय बिताया जाता है, वही फालतू समय है। फालतू समय बिताया हुआ आपके किस काम आवेगा?—ऐसा विचारकर अब तो बहुत ही जल्दी चेतना चाहिये।

[३२]

प्रेमकी बात ········· की चिट्ठीमें लिखी है, उसे देख सकते हैं। और आपको विचारना चाहिये! मैं कौन हूँ? किसलिये यहाँ आया हूँ? मुझे क्या करना चाहिये? और मैं क्या कर रहा हूँ? आपका इस तरह पेट भरनेके लिये ही यहाँ नहीं आना हुआ है। आपने मनुष्य-जन्म पाकर क्या किया? जब मृत्यु आकर प्राप्त होगी, उस समय आप क्या करेंगे? उस समय आपके रुपया, स्त्री, पुत्र तथा कुटुम्बी लोग क्या काम आवेंगे? शरीर भी तो आपके साथ नहीं जायगा! उस समय कोई भी सहायता नहीं दे सकेगा। कोई भी काम नहीं आवेगा। केवल भगवान्‌का भजन किया हुआ होगा तो वही काम आवेगा, शेष तो सब जवाब दे देंगे। क्योंकि और किसीकी वहाँ चलती भी नहीं है। फिर आप धोखेमें पड़कर किसलिये इस प्रकार सांसारिक पदार्थोंके

लिये रात-दिन मारे-मारे फिर रहे हैं? रुपये एकत्र करनेमें इतनी उम्र तो बिता दी है, फिर भी बिता रहे हैं? आप कुछ विचार नहीं कर रहे हैं कि ये रुपये मेरी क्या सहायता करेंगे? क्या आपके पास कोई अमरपट्टा है? क्या मृत्यु और यमराजके साथ आपकी दोस्ती है? क्या इन सब चीजोंको किसी भी प्रकार अपने साथ ले जानेका कोई उपाय है? यदि नहीं तो फिर इस नाशवान् अनित्य संसारके पदार्थोंसे प्रेम हटाकर एकमात्र सच्चे निष्काम प्रेमी प्यारे मनमोहनसे ही निष्कामभावसे अनन्यप्रेम क्यों नहीं कर लेना चाहिये? फिर कब चेतेंगे? जल्दी चेतना चाहिये। बहुत-सा समय चला गया। ढील किसलिये कर रहे हैं? किसके भरोसे निश्चिन्तकी-ज्यों हो रहे हैं?

[३३]

मुझसे मिलनेकी टान लिखी, सो यह तो आपके प्रेमकी बात है और आजकल भजन कम होता लिखा तथा सांसारिक कामोंमें फँसाव लिखा, सो सत्संग कम हुआ होगा। आपने लिखा कि पीछे पछताते भी हैं, सो इस तरहके पछतानेसे पूरा काम नहीं बनेगा। असली पछताना तो उसीका समझा जाता है, जिसको उस कामके लिये फिर दुबारा नहीं पछताना पड़ता। एक कामके लिये अनेक बार पछताये, फिर भी काम न हो और बार-बार पछताना पड़े, तो उसका क्या मूल्य है? परन्तु इस तरहका सुन्दर मौका लग जानेपर भी यदि भगवान्‌के भजन-ध्यानमें जोरसे न लगकर इसी प्रकार ही संसारमें भटकते रहे तो जन्म-जन्ममें पछताना पड़ेगा। इसलिये सारी बात विचारकर ऐसा उपाय करना चाहिये, जिससे आगे पछताना न पड़े। अगर साधन तेज करके जिस कामके लिये आना हुआ है, उसे सिद्ध कर लेंगे तो फिर कभी पश्चात्ताप नहीं करना पड़ेगा।

आपने लिखा कि आजकल संसारका चिन्तन ही अधिक होता है, भजन नहीं बनता, अतः मन भगवान्‌में कैसे लगे; सो प्रेम होनेसे मन भगवान्‌में लगता है। प्रेमकी बातें श्री······के पत्रमें लिखी हैं, उन्हें ध्यानमें लाना चाहिये।

× × × यदि इस तरहका प्रेम भगवान्‌में हो जाय तो भगवान्‌के आनेमें बिलकुल सन्देह नहीं। क्योंकि श्रीपरमात्मादेव स्वयं सर्वसामर्थ्यवान् और स्वतन्त्र हैं। इसलिये उनके साथ पूर्ण प्रेम करना चाहिये। × × × भगवान्‌में निष्कामभावसे पूर्ण प्रेम करनेके लिये कटिबद्ध हो जाना चाहिये। उनके साथ प्रेम होनेके बाद आपको कुछ भी नहीं करना होगा। फिर आपको किसीकी भी गरज नहीं रहेगी। लोग ही आपकी गरज करेंगे। किन्तु उनके साथ प्रेम नहीं हुआ तो कुछ भी नहीं हुआ।

[३४]

× × × पहले मैंने आपको सत्संगके समाचार लिखे थे; उनके अनुसार आप साधन करते हैं या नहीं? सो लिखना चाहिये। समयको अनमोल समझनेकी कोशिश करनी चाहिये। समयकी अमूल्यता समझनेके बाद भगवान्‌के मिलनमें इस तरहकी ढील नहीं हो सकती; इसलिये समयको अनमोल समझना चाहिये। जिस समय आप समयकी अमूल्यता समझ लेंगे, उस समय आपको भगवान्‌के सिवा संसारकी अन्य कोई भी वस्तु अच्छी नहीं लगेगी तथा संसारके ये क्षणभंगुर भोग प्रत्यक्ष नाशवान् प्रतीत होने लगेंगे एवं सर्वत्र एक श्रीपरमात्मादेव ही दीखने लग जायँगे। किन्तु समयको अमूल्य समझे बिना कुछ भी नहीं होगा। समयको अनमोल जान लेनेके बाद एक पलक भी व्यर्थ काममें नहीं बितायी जा सकती। जबतक संसारके तुच्छ भोगोंके लिये समय बिताया जाता है, तबतक समयका कुछ भी प्रभाव नहीं जाना। आपको विचारना चाहिये कि हम कौन हैं, किसलिये यह मनुष्य-शरीर हमें मिला है, हमें क्या करना चाहिये और क्या कर रहे हैं।

[३५]

आपने लिखा कि मेरा प्रेम बहुत कम हो गया, सो प्रेम तो कभी कम हो नहीं सकता। यदि देखनेमें कम नजर आये तो भी वास्तवमें कम नहीं समझना चाहिये। निष्काम-कर्म, उपासना और प्रेमका क्षय हो नहीं सकता। प्रेमका उपाय......के पत्रमें लिखा गया है। पहले भी आपका प्रेम अधिक नहीं था, आपने भूलसे अधिक मान लिया था। वास्तविक प्रेम तो कभी कम होता ही नहीं। सकाम प्रेम रहा होगा। प्रेम तो कुछ और ही चीज है। असली प्रेमका विषय तो आप जानते भी नहीं। प्रेमी आदमियोंके साथ प्रेम होनेसे ही प्रेमका मर्म जाना जाता है। श्रीकृष्णचन्द्रजी महाराजके साथ गोपियोंका सच्चा प्रेम था तथा कुछ उद्धव और अर्जुनका भी था। जिसने भगवान्‌के प्रेमका मर्म जाना है, वह उस भगवत्प्रेमके लिये एक पलमें आनन्दपूर्वक सर्वस्व त्याग सकता है। सर्वस्व त्याग देनेमें उसे कुछ भी क्लेश नहीं होता, बल्कि आनन्द ही होता है। वह प्रेमीके एक पलके संगके लिये भी प्राणपर्यन्त चेष्टा करता है। प्रेमीके संगके लिये लाख रुपया त्यागना भी कोई बड़ी चीज नहीं। अपने प्रेमीके एक क्षणके संगके लिये चाहे सर्वस्व नाश हो जाय, पर वह अपने प्रेममें किंचित् भी कलंक नहीं लगने देता और प्रेमीका समाचार सुननेपर आनन्दमें विह्वल हो जाता है तथा प्रेमीका सन्देश सुनानेवालेका उपकार वह कभी नहीं भूलता, जैसे भरतजी हनुमान्‌जीका उपकार नहीं भूलते।* प्रेमीका नाम सुननेसे भी नेत्रोंसे अश्रुपात होने लगता है, रोमांच हो जाता है और हृदयमें आनन्द नहीं समाता तथा जिसके साथ प्रेम होता है, उसके साथ लज्जा, भय, मान, मोह, सत्कार और सांसारिक वस्तुकी कामनाका बर्ताव कभी नहीं होता।

---

* एहि संदेस सरिस जग माहीं। करि बिचार देखेउँ कछु नाहीं॥
नाहिन तात उरिन मैं तोही। ....॥

[३६]

तुमने लिखा कि मेरा ईश्वरमें प्रेम हो जाय—ऐसी बात लिखनी चाहिये, सो ठीक है; जिनका ऐसा प्रेम है, उन लोगोंको धन्यवाद है। ईश्वरमें प्रेम होनेकी बात भी उन्हींको मालूम है, किन्तु फिर भी अपनी समझके अनुसार कुछ लिखा जाता है।

भगवान्‌के नामका जप और स्वरूपका ध्यान करनेसे भगवान्‌में प्रेम होता है। भगवान्‌के प्रेमी भक्तोंद्वारा भगवान्‌के गुणानुवाद, प्रभाव तथा मर्मकी गुप्त बातें सुननेसे भगवान्‌में बहुत जल्दी प्रेम हो सकता है तथा भगवान्‌के आज्ञानुसार निष्कामभावसे भगवान्‌के लिये ही कर्म करनेसे और भगवान्‌से मिलनेकी उत्कण्ठा होनेसे भगवान्‌में प्रेम हो सकता है।

ऊपर लिखी बातोंको काममें लाकर भगवान्‌का प्रभाव जान लिया जाय, तब भगवान्‌में श्रद्धा-भक्ति होकर भगवान्‌के दर्शन हो जाते हैं।

× × × समय बीता जा रहा है। जल्दी चेतना चाहिये। तुम्हारा साधन कैसा होता है? भजन, ध्यान, सेवा, सत्संगको सबसे उत्तम समझनेसे बहुत जल्दी भगवान् मिल सकते हैं। जबतक संसारके भोग, शरीर तथा रुपयोंको श्रेष्ठ समझा जाता है, तभीतक भगवान्‌के मिलनेमें ढील होती है; एवं जबतक समयकी अमूल्यता नहीं समझी जाती, तभीतक भगवान्‌के मिलनेमें विलम्ब हो रहा है। जब एकमात्र भगवान्‌को ही श्रेष्ठ समझ लिया जायगा तथा समयकी अमूल्यता समझमें आ जायगी, तब भगवान्‌के मिलनेमें देर नहीं हो सकती।

[३७]

उस मनमोहन प्यारेमें शीघ्र ही सबकी अनन्यभक्ति हो जाय—ऐसा उद्देश्य रखकर सत्संगकी चेष्टा होनी चाहिये। निरन्तर भगवान्‌का ध्यान रहते हुए ही ऊपर लिखे अनुसार कोशिश होनी चाहिये। ध्यानकी गाढ़ स्थिति रहनेपर हृदयमें बहुत ऊँचे-ऊँचे भावोंकी बातें उत्पन्न हो सकती हैं। श्रीभगवद्भक्तिके प्रचारका काम जल्दी तेज कैसे हो—इस प्रकार विचार रखनेसे श्रीभगवद्भक्तिका प्रचार ज्यादा बढ़ सकता है। इसके समान और कोई भी काम नहीं है। श्रीभगवान्‌ने गीता अध्याय १८ श्लोक ६८-६९में यही बात कही है।* इसलिये कटिबद्ध होकर निष्कामभावसे चेष्टा करनी चाहिये, फिर कुछ भी चिन्ता नहीं। समयको अमूल्य समझ लेनेके बाद कंचन-मिट्टी सभी समान हो जाते हैं। इसलिये समयको अमूल्य समझनेका विशेष प्रयत्न करना चाहिये तथा श्रीपरमात्मादेवके सिवा अन्य कुछ भी न रहे—ऐसे ध्यानके आनन्दमें निरन्तर मग्न रहना चाहिये। समय बीता जा रहा है। एक क्षण भी तेज साधनके बिना नहीं बिताना चाहिये एवं स्वप्नमें भी शरीरमें अहंभाव नहीं रहना चाहिये। इस प्रकार लोगोंको कहना चाहिये और कहना चाहिये कि मनुष्य-शरीर बहुत ही कठिनतासे मिलता है; यदि इस मौकेपर भी कल्याण नहीं होगा तो फिर न मालूम क्या दशा होगी—ऐसा समझकर तुरंत भगवान्‌के परायण हो जाना चाहिये।

---

* य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः॥
न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि॥

'जो पुरुष मुझमें परम प्रेम करके इस परम रहस्ययुक्त गीताशास्त्रको मेरे भक्तोंमें कहेगा, वह मुझको ही प्राप्त होगा—इसमें कोई सन्देह नहीं है और उससे बढ़कर मेरा प्रिय कार्य करनेवाला मनुष्योंमें कोई भी नहीं है; तथा पृथ्वीभरमें उससे बढ़कर मेरा प्रिय दूसरा कोई भविष्यमें होगा भी नहीं।'

[३८]

आपका ता० २७-३-४१का पत्र मिला। आप कल्याणके लेख पढ़ते हैं तथा उनको काममें लानेकी चेष्टा करते हैं, सो बहुत आनन्दकी बात है। आपको कोशिश करनेपर भी सफलता न मिली, इसलिये तीन प्रश्नोंका उत्तर पूछा, सो नीचे लिखा जाता है—

(१) प्रश्न—परस्त्रीका तो त्याग है। अपनी स्त्रीके साथ भी ब्रह्मचर्यसे रहनेका बहुत दिल होता है, किन्तु सफलता नहीं मिलती।

उत्तर—स्त्रीके साथ एक शय्यापर नहीं सोना चाहिये। एक कमरेमें भी दोनोंको अलग-अलग सोना चाहिये और विवेक-विचारपूर्वक संयम रखना चाहिये। यदि विवेक-विचारसे न हो सके तो स्त्री-पुरुष दोनोंकी सम्मतिसे नियम करके हठपूर्वक संयम करना चाहिये। स्त्रीसहवाससे बल, वीर्य, तेज, बुद्धि, आयुका नाश तो होता ही है। इसलिये इनके नाशका भय दिखलाकर विवेक-वैराग्यपूर्वक संयम रखना चाहिये।

(२) प्रश्न—भजन-ध्यानके समय मन भटकता रहता है। बहुत कोशिश करनेपर भी एकाग्रता नहीं होती। मन तो हजारों कोस चला ही जाता है।

उत्तर—मनको यह भय दिखलाना चाहिये कि मृत्युका कोई पता नहीं, न जाने कब आ जाय। यदि भगवान्‌के चिन्तन बिना संसारका चिन्तन करते हुए मृत्यु हो गयी तो बड़ी बुरी दशा होगी। इसलिये सचेष्ट होकर मनको बार-बार भगवान्‌के चिन्तनमें लगानेका प्रयत्न करना चाहिये। इसके लिये गीतातत्त्वांकमें अध्याय ६ श्लोक २५, २६, ३५, ३६ का तथा अध्याय ८ श्लोक ५, ६, ७ का अर्थ देखना चाहिये।

(३) प्रश्न—भजनपर श्रद्धा होनेके बाद कुछ लक्ष्मीकी प्राप्ति जरूर होती है, परन्तु वह ईमानदारीकी नहीं होती, प्रार्थना करता हूँ कि ईमानदारीकी कमाई मिले, किन्तु मिलती है छल-कपटसे ही।

उत्तर—भजनका फल लक्ष्मीकी प्राप्ति नहीं है, वह तो प्रारब्धपर

निर्भर है तथा धनकी प्राप्ति ईमानदारीसे नहीं होती, छल-कपटसे होती है, इसमें आपके प्रारब्ध और ईश्वरपर विश्वासकी कमी है। आत्मबलकी कमीके कारण ही ऐसा होता है। जितना ही प्रारब्ध और ईश्वरपर विश्वास बढ़ेगा, उतना ही आत्मबल बढ़ेगा; अतः आत्मबलकी वृद्धिके लिये प्रारब्ध और ईश्वरपर विश्वास करना चाहिये। प्रारब्धपर विश्वास करना यह है कि प्रारब्धके अनुसार जो कुछ मिलना होगा, वह न्याययुक्त चेष्टा करनेसे भी मिल ही जायगा; फिर पाप क्यों करना चाहिये। प्रारब्धसे अधिक तो मिलेगा नहीं। यदि प्रारब्धमें न मिलना होगा तो चेष्टा करनेपर भी नहीं मिलेगा, फिर विश्वासमें ही कमी क्यों आने दी जाय। और ईश्वरपर विश्वास करना यह है कि जब ईश्वर विश्वम्भर है तो अपनेको क्या चिन्ता है। वह सबका पेट भरेगा ही और पेट भर जानेपर फिर रुपयोंकी जरूरत ही क्या है। लक्ष्मी मिलकर यदि सकाम भक्तिमें भी कमी आये तो फिर उन रुपयोंसे लाभ ही क्या है।

[३९]

आपलोगोंको इतने दिन हो गये, पर अभीतक तेज साधन नहीं हुआ। पहलेकी अपेक्षा तो कुछ चेष्टा अधिक दीखती है; परन्तु जितनी चेष्टा होनी चाहिये उतनी नहीं हुई तथा योग्यताके अनुसार चेष्टा नहीं हुई। खैर, जो कुछ हुआ सो हुआ; अब तो बहुत जोरसे चेष्टा करनी चाहिये, अपने आत्मबलको देखना चाहिये और साधन बहुत तेज हो, इसके लिये चेष्टा करनी चाहिये, मान-अपमानमें, निन्दा-स्तुतिमें, सुख-दुःखमें और मिट्टी-सुवर्णमें समान और राग-द्वेषरहित होकर संसारमें जीवन्मुक्तकी तरह विचरनेके लिये साधन करना चाहिये तथा उत्तम गुण स्वाभाविक ही होने चाहिये। तेज, क्षमा, धृति, शौच, अमानित्व, अदम्भित्व आदि सद्‌गुणोंकी प्राप्तिके लिये भजन-ध्यान-सत्संगका साधन निष्काम प्रेमभावसे करनेकी विशेष चेष्टा करनी चाहिये। एक सत्-चित्-आनन्द-घनमें मग्न होनेके लिये ही जो

भजन-सत्संगका अभ्यास करना है वही निष्काम प्रेमभावसे तेज साधन करना है। शरीर तथा संसारके भोग सब नाशवान् और क्षणभंगुर हैं—ऐसा जानकर उस सच्चे प्रेमीको अपने चित्तसे कभी नहीं भूलना चाहिये। अन्य कार्योंमें भले ही हर्ज हो, शरीरको भी चाहे जितनी तकलीफ हो, संसारके आराम चाहे सब चले जायँ; किन्तु एक भगवान् अवश्य मिलने चाहिये—ऐसा भाव हर समय रखना चाहिये।

[४०]

उधर सत्संगका प्रचार कैसा हो रहा है? आपलोगोंको कटिबद्ध होकर भगवद्भक्तिका प्रचार करना चाहिये और निष्कामभावसे लोगोंकी सेवा करनी चाहिये। सब जीवोंकी जो सेवा है, वही नारायणदेवकी सेवा है। श्रीभगवान्‌को हेतुरहित सच्चे प्रेमी समझकर उन मनमोहन श्रीहरिभगवान् आदि नारायणदेवको अपने चित्तसे कभी नहीं भुलाना चाहिये। इस असार संसारसे रवाना होंगे, उस दिन यहाँकी कोई भी वस्तु आपके साथ नहीं जायगी। शरीर भी यहीं रह जायगा। श्रीनारायणदेवका चिन्तन किया हुआ होगा तो वह काम आवेगा। उत्तम कर्म भी साथ जा सकते हैं; इसलिये उत्तम-उत्तम आचरणोंके लिये विशेष चेष्टा करनी चाहिये। एक श्रीहरिभगवान्‌के सिवा आपका और कोई भी नहीं है। सारा संसार अपने मतलबका है। आप इसके मोहजालमें फँसकर अपने अमूल्य जीवनको किसलिये मिट्टीमें मिला रहे हैं? यदि ऐसे मौकेपर भी नहीं चेतेंगे तो पीछे पछताना पड़ेगा।

[४१]

नित्य-बोधस्वरूप आनन्दघनमें निरन्तर विशेष स्थिति रहनेके लिये चेष्टा करनी चाहिये। सामान्य स्थिति तो रहती ही है; परन्तु बोध और आनन्दकी बहुलता गाढ़रूपसे निरन्तर रहे—इसीके लिये विशेष चेष्टा करनी है। अब जल्दी ही श्रीपरमात्मादेवको प्राप्त करनेके लिये प्रयत्नशील हो जाना चाहिये। बहुत समय हो गया है; अब तो विचारना

चाहिये। श्रीपरमात्माका वियोग आपलोग सह सकते हैं, तभी वियोग हो रहा है। जिस दिन वियोग सहन नहीं हो सकेगा, उस दिन संयोग होनेमें देर नहीं होगी। जो कुछ विलम्ब होता है; उसमें अपने ही साधनकी त्रुटि समझनी चाहिये। श्रीपरमात्मादेवकी ओरसे तो एक पलककी भी ढील नहीं है। भगवान् तो सब जगह प्राप्त ही हैं, केवल विश्वासकी त्रुटि है। इसी कारण प्राप्त होते हुए भी अप्राप्त-से लग रहे हैं। श्रीपरमात्मादेव सब जगह प्रत्यक्ष हैं। इसमें कुछ भी सन्देहकी बात नहीं है। ये शास्त्रके ही वचन हैं, पर श्रद्धा होनी चाहिये। जो कुछ भी उपाय करना है, वह इस श्रद्धाके लिये ही करना है।

[४२]

श्रीभगवान्का भरोसा रखना चाहिये। किसी बातकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। गीता अध्याय २ श्लोक ११* के अर्थका मर्म समझ लेनेके बाद किसी बातकी चिन्ता रह नहीं सकती; क्योंकि चिन्ताके योग्य कोई वस्तु है ही नहीं। आपने लिखा कि कृपा करके ऐसा उपाय लिखना चाहिये, जिससे मेरा भजनमें प्रेम हो जाय, सो ठीक है। यदि लिखनेसे प्रेम होता तो कई बार लिखा हुआ है ही, प्रेम हो जाना चाहिये था। जिनके लिखनेसे, भाषणसे, दर्शनसे और स्पर्शसे भगवान्में पूर्ण प्रेम हो जाया करता है, ऐसे पुरुषोंसे मिलनेकी चेष्टा करनी चाहिये। श्रीपरमात्मादेव यदि मुझको ऊपर लिखे अनुसार गुण-प्रभाववाला बना देते तो फिर आपको इतना लिखना ही नहीं पड़ता, किन्तु इस प्रकारका प्रभाव होना बहुत दुर्लभ है। श्रीभगवान्के भक्तोंमें भी कोई बिरला ही ऐसे प्रभाववाला होता है। श्रीपरमात्मादेवको प्राप्त

---

* अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥

'हे अर्जुन! तू न शोक करनेयोग्य मनुष्योंके लिये शोक करता है और पण्डितोंके-से वचनोंको कहता है; परन्तु जिनके प्राण चले गये हैं, उनके लिये और जिनके प्राण नहीं गये हैं, उनके लिये भी पण्डितजन शोक नहीं करते।'

हुए पुरुषोंमें भी ऐसे प्रभाववाला बिरला ही कोई होता है। मैं तो साधारण मनुष्य हूँ। इसलिये मेरी बड़ाईका समाचार नहीं लिखना चाहिये। गीताके उपर्युक्त श्लोकके अर्थका अभ्यास करना चाहिये।

[४३]

साधन तेज हो, इसके लिये विशेष चेष्टा करनी चाहिये। जैसा स्वभाव जीवन्मुक्त पुरुषोंका होता है, वैसा ही ऊँचे दर्जेका स्वभाव आपको बनाना चाहिये। जो भी कुछ हो, सबमें समभाव रखकर एक श्रीपरमात्मादेवके सिवा अन्य कुछ भी न प्रतीत हो—ऐसी स्थिति प्राप्त करनी चाहिये।

[४४]

साधनमें त्रुटि होनेके कारण आपका प्रेम कम है। जिस प्रकार धन, शरीर और संसारमें प्रेम है, उसी प्रकार भगवान्‌में प्रेम होना चाहिये। आपलोग तो समझते हैं कि संसारमें रुपये ही सबसे बढ़कर हैं; क्योंकि रुपयेसे सब कुछ मिल सकता है। इसीलिये रुपयेमें विशेष प्रेम हो रहा है; किन्तु इस प्रकार समझना बहुत ही भूल है। रुपयेसे श्रीपरमात्मादेव नहीं मिलते। श्रीपरमात्मादेवकी तो बात ही दूर है, भगवान्‌का प्रेमी भक्त भी रुपयेसे नहीं मिलता। प्रेमसे ही प्रेमी भक्त मिल सकते हैं; फिर भगवान्‌की तो बात ही क्या है? भगवान्‌के भक्तोंके संगके सामने रुपये कुछ भी नहीं हैं; परन्तु आप तो दस रुपयोंके लिये भी चार दिनका सत्संग छोड़ देते हैं; आपने सत्संगका प्रभाव नहीं जाना है; रुपयेको ही बड़ी बात समझ रखी है। भगवान्‌का प्रभाव जान लेनेके बाद तो रुपये मिट्टीके समान लगने लग जाते हैं। कारण, रुपया उसके आगे फिर क्या वस्तु है? जब त्रिलोकीका मालिक उसका प्रेमी है, तो फिर रुपया क्या चीज है?

[४५]

भजन-ध्यान होनेका उपाय है—सत्संग तथा भजन-ध्यानके लिये चेष्टा करना। किन्तु सत्संग भी प्रेम होनेसे, सच्चिदानन्दघन भगवान्‌की कृपासे तथा भगवान्‌की कृपा मानकर उनके शरण होकर चेष्टा करनेसे ही हो सकता है। इस काममें पुरुषार्थ ही प्रधान है। भगवान्‌की शरण भी लेनी चाहिये; नहीं तो पुरुषार्थका अभिमान हो सकता है। अपने पुरुषार्थसे भगवान् मिलते हैं—इस तरहका अभिमान भी साधनमें बाधा देनेवाला है, इसके नाशके लिये भगवत्कृपाका आश्रय ही एकमात्र साधन है। साधन तेज नहीं होता तो समझना चाहिये कि भगवत्कृपाके आश्रयमें ही भूल है और वह शरणागत भी कहनेमात्रका ही है। हाँ, न होनेसे तो कहनामात्र भी अच्छा है। वस्तुतः शरण हो जानेके बाद तो मनुष्य जो कुछ भी हो, उसीमें आनन्द मानता है; क्योंकि जो कुछ होता है, सब भगवान्‌की इच्छासे ही होता है। इस तरह मानकर हर समय आनन्दमें मग्न रहना चाहिये।

[४६]

लोभसे ही झूठ बोला जाता है। लोभ ही पापका मूल है। इसलिये लोभका त्याग करना चाहिये। लोभके त्यागके लिये निष्कामभावसे भगवान्‌का भजन-ध्यान करना चाहिये, मृत्युको याद रखना चाहिये एवं शरीर, भोग और संसारके सब पदार्थोंको क्षणभंगुर तथा नाशवान् समझना चाहिये। अनित्य संसारके भोगोंके लिये उस नित्य सच्चे प्रेमी भगवान्‌को नहीं भूलना चाहिये। संसारके सारे पदार्थ नाशवान् हैं, कोई भी पदार्थ साथ नहीं जायगा, एक भगवान् ही साथ जायँगे। इस तरह समझकर भगवान्‌के भजन-ध्यानको भूलना नहीं चाहिये। भजन-ध्यानसे ही झूठ बोलना छूट सकता है। झूठसे भगवत्प्राप्तिमें बड़ी भारी रुकावट पड़ती है—ऐसा समझ लेनेपर झूठ छूट सकता है।

[४७]

आप जिस कामके लिये आये थे, उसे आपको याद करना चाहिये। मनुष्यका शरीर केवल पेट भरनेके लिये ही नहीं मिला है। जिस प्रकार भगवान् मिलें, सच्चा कल्याण हो वैसी चेष्टा करनी चाहिये। इससे बढ़कर आपके लायक और कोई भी काम नहीं है। जबतक भगवान्की प्राप्ति नहीं हुई, तबतक कुछ भी नहीं हुआ। भगवान्की प्राप्ति होती है—निरन्तर निष्काम प्रेमभावसे, भगवान्का भजन-ध्यान करनेसे तथा सत्संग और सेवा करनेसे। इसलिये अपने शरीरको संसारकी सेवा करनेमें तथा भगवान्के भजन-ध्यानमें लगाना चाहिये। इससे बढ़कर और कोई काम नहीं है।

[४८]

सत्संगमें अधिक मनुष्य नहीं आते, सो ठीक है। सब प्रकारसे स्वार्थ और मान-बड़ाई-प्रतिष्ठाकी इच्छाको त्यागकर मन, वाणी और शरीरसे सबकी सेवा करनेका भाव रखते हुए प्रयत्न करना चाहिये। स्वार्थ-त्यागके व्यवहारसे सत्संगमें लोग कुछ जुट सकते हैं; किन्तु चेष्टा करनेकी विशेष आवश्यकता है। बहुत जल्दी सब भगवान्की भक्तिमें लग जायँ, बहुत जल्दी सबका भगवान्में प्रेम हो जाय और बहुत जल्दी सबको लाभ पहुँच जाय—इसके लिये उपाय पूछा, सो ठीक है। श्रीपरमात्माके प्रेमी भक्तोंको उधर बुलाना चाहिये और उनका सत्संग करनेके लिये सब भाइयोंसे आग्रह करना चाहिये तथा भगवद्भक्तिके प्रचारके लिये तन-मन-धनसे सबकी निष्कामभावसे विशेष सेवा करनी चाहिये एवं श्रीपरमात्मादेवकी शरण लेनी चाहिये। उसीको सब कुछ समझना चाहिये। फिर वह जो कुछ भी करे, उसीमें आनन्द मानना चाहिये। सबके साथ बहुत ही उत्तम बर्ताव करना चाहिये। माता-पिताकी सेवा करने, प्रतिदिन उनके चरणोंमें सिर नवाने और उनकी आज्ञा पालन करनेका विशेष ध्यान रखना चाहिये। अपने आचरण उत्तम बनाने चाहिये। अपने आचरण उत्तम बनाये बिना

दूसरोंपर प्रभाव नहीं पड़ता, इसलिये पहले आचरण सुधारनेकी तरफ तो बहुत ही ध्यान देनेकी आवश्यकता है। बहुत दिनोंतक इस प्रकार चेष्टा करनेपर बहुत आदमी सत्संगमें लग सकते हैं।""में जो बहुत आदमी लगे हैं, वे बहुत दिनोंकी चेष्टासे लगे हैं, मनुष्योंकी संख्या बढ़ते-बढ़ते बढ़ी है, वहाँकी जनसंख्या भी अधिक है। चिन्ता-फिक्र तो किसी बातका करना ही नहीं चाहिये। यदि भगवान्‌की मर्जी आदमी कम बढ़ानेकी हो तो इसमें भी आनन्द मानना चाहिये, पर अपनी चेष्टा नहीं छोड़नी चाहिये। चेष्टा करना तो अपना कर्तव्य ही है।

सत्, चित्, आनन्दघन परमात्मा सब जगह परिपूर्ण हैं—सब समय इस प्रकारका अभ्यास करना चाहिये। चाहे सो हो, श्रीपरमात्मादेवका भजन-ध्यान एक पल भी नहीं छोड़ना चाहिये। जिस जगह भी मन और नेत्र जायँ, उसी जगह एक वासुदेवको देखना चाहिये। अभ्यास बहुत तेज हो जानेपर तो संसारका काम करते हुए भी श्रीपरमात्मामें अटल स्थिति रह सकती है; फिर भगवद्‌गुणानुवादके द्वारा सब भाइयोंकी भगवान्‌में स्थिति बनी रहनी कौन बड़ी बात है? यदि लोग एक बार भगवद्भक्तिमें अच्छी तरह लग जायँ और भगवद्विषयका उन्हें आनन्द आ जाय तो फिर उनका अपने-आप ही प्रेम हो सकता है। एक बार इस विषयका सच्चा आनन्द आये बिना पूरा लाभ होना कठिन है। परन्तु पहले-पहल तो विश्वास कराके ही लगाना पड़ता है; साधन तेज होने तथा आनन्द आनेपर तो लोग स्वतः ही जोरसे लग सकते हैं और फिर लाभ भी जल्दी हो सकता है।

[४९]

एक तो निष्कामभावमें किंचित् भी दोष नहीं आना चाहिये। दूसरे, शास्त्रोंका अभ्यास तुम्हारे बहुत कम है, सो शास्त्रोंका अभ्यास करना चाहिये और श्रीगीताजीके अर्थमें बुद्धि लगानी चाहिये, जिससे श्रीपरमात्माका प्रभाव तथा गुप्त रहस्य जाना जाय। बहुत ही श्रद्धा-प्रेमसे भगवान्‌के प्रेमी

भक्तोंका संग करके उनसे भगवान्‌का प्रभाव समझना चाहिये और उन पुरुषोंके वचनोंके अनुसार साधन करनेके लिये कटिबद्ध होकर प्रयत्नशील हो जाना चाहिये। उत्तम आचरणोंके लिये भी विशेष कोशिश करनी चाहिये। यद्यपि उत्तम आचरणोंके लिये चेष्टा करनेकी भी बहुत आवश्यकता है; परन्तु यदि भगवान्‌की भक्ति तथा सत्पुरुषोंके संगके द्वारा श्रीपरमात्माका प्रभाव जान लिया जाय तो फिर उत्तम आचरण तो स्वाभाविक ही आ सकते हैं। श्रीपरमात्माकी प्राप्तिके लिये प्राणपर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये। ऐसा अवसर पाकर भी यदि नहीं करेंगे तो फिर कब करेंगे। श्रीनारायणदेवकी आज्ञाके अनुसार चलना चाहिये। श्रीपरमात्मादेव जिस प्रकार चेष्टा करनेसे शीघ्र प्रसन्न हों, उसी प्रकार तत्परतासे चेष्टा करनी चाहिये। भले ही प्राण चले जायँ, शरीर मिट्टीमें मिल जाय, कोई चिन्ता नहीं; शरीर फिर है ही किसलिये?

[५०]

तुम्हारा प्रेम आजकल किसमें हो रहा है? × × × × तुम इस असार संसारके विषय-भोगोंमें फँसकर अपने अमूल्य समयको बिता रहे हो, पर विचारनेकी बात है, क्या यह समय फिर वापस आवेगा? याद रखना, यदि तुच्छ कामोंमें ही समय बिता दोगे और भगवान्‌के दर्शन हुए बिना ही संसारसे चले जाओगे तो अन्तमें पश्चात्ताप ही करना पड़ेगा।

तुम अपनी शक्तिको क्यों नहीं सँभालते हो? तुम किसलिये भूल रहे हो? पहले तुम्हारा साधन बहुत तेज हो रहा था; किन्तु उस तरहका रोजगार अब क्यों नहीं होता है? चाहे जो हो, सांसारिक जालमें मनको एक क्षणके लिये भी नहीं फँसने देना चाहिये। जिस कामके लिये आये हो, उस काममें तुम्हें बहुत तेजीसे लग जाना चाहिये। ऐसा अवसर क्या सदा ही रहेगा? समय बीता जा रहा है; गये दिन वापस नहीं आते। कलियुगके इस घोर समयमें थोड़े-से साधनसे भी परमात्मादेवकी प्राप्ति हो सकती है; फिर तुम किसलिये कटिबद्ध होकर चेष्टा नहीं करते?

[५१]

तुमने लिखा कि आपके जँचे सो लिखना चाहिये, सो भाई! पहलेकी अपेक्षा तुम्हारा सत्संगमें प्रेम कम दीखता है। पत्र पढ़नेमें भी पहले और भी अधिक प्रेम था, साधनकी ओर भी समय-समयपर बहुत उत्तेजना हुआ करती थी, संसारके काम झंझटकी तरह मालूम दिया करते थे; ये सब बातें देखनेसे साधन कुछ कम मालूम देता है, सो क्या बात है? तुम्हें जो पहले पत्र लिखा गया था, उसमें बड़ा उत्साह दिलाया गया था, उसका तुमपर क्या असर पड़ा? पहले तुम्हारे एकान्तकी तथा सत्संगकी बहुत टान रहा करती थी और बहुत जोशकी बातें भी हुआ करती थीं, पर अब क्या हुआ? विचारना चाहिये और पहलेकी बातोंको बार-बार याद करना चाहिये। एक बार तुम्हारी झंझट जानकर काम छोड़ देनेकी भी इच्छा हो गयी थी एवं कई बार सब कुछ छोड़ देनेकी भी उत्तेजना हुआ करती थी; किन्तु अब संसारके पदार्थोंमें, स्त्री-पुत्रोंमें एवं शरीरके आराम और भोगोंमें प्रेम कुछ अधिक मालूम देता है। इस प्रेमको भगवत्प्राप्तिमें बाधक समझकर साधन करना चाहिये और श्रीगीताजीके पढ़नेका आसरा लेना चाहिये। श्रीभगवान्‌के वचनोंको अमूल्य समझकर हृदयमें धारण करना चाहिये। इसमें श्रीपरमात्मादेवके गुणानुवाद ही भरे हुए हैं, इसलिये रात-दिन श्रीगीताजीके रटनेका जो अभ्यास है, वह नाम-जपसे भी बढ़कर है। यदि अर्थ और भावसहित इसका अभ्यास किया जाय तो उसकी तो बात ही क्या है? यदि श्रीगीताजीके उपदेशके अनुसार आचरण हो जायँ अर्थात् उपदेश धारण हो जाय तब तो उसमें अनेकों मनुष्योंका उद्धार करनेकी सामर्थ्य हो जाय; फिर अपने कल्याणकी तो बात ही क्या है? इसीलिये श्रीगीताजीका अभ्यास करनेके लिये विशेषरूपसे लिखा जाता है किन्तु तुम तो इतना खयाल करते नहीं। भाई! हम-तुम मित्र हैं, अतः हमारी बातोंको तुम खयाल न भी करो तो भी कोई हर्ज नहीं; परन्तु श्रीगीताजी तो श्रीभगवान्‌के वाक्य हैं, उनकी तरफ तो जरूर ध्यान देना चाहिये। ज्यादा क्या लिखें?

[५२]

श्रीपरमात्माके नामका जप हर समय करना चाहिये। जैसे लोभी मनुष्य रुपयेको नहीं भूलता, इसी प्रकार भगवान्‌को कभी नहीं भूलना चाहिये। आपको विचारना चाहिये, यदि रुपयेके समान भी भगवान् न होते तो फिर भगवान्‌को कौन बुद्धिमान् पूछता? पहले जितने महात्मा, साधु, योगी, ऋषि, मुनि हुए हैं, सब भजन, ध्यान, सत्संगके प्रतापसे ही हुए हैं। अतः भगवान्‌का भजन-ध्यान तेज हो—ऐसी चेष्टा जल्दी करनी चाहिये।

[५३]

संसारमें आकर अपने मालिकको नहीं भूलना चाहिये। जिस कामके लिये संसारमें आना हुआ है, उस कामका भी खयाल रखना चाहिये। यदि अपना काम बनाये बिना ही चले जाना होगा तो बहुत भारी हानि है—इसे विचार लेना चाहिये। संसारमें आकर क्या किया? संसारकी तो सारी ही वस्तुएँ धोखा देनेवाली हैं। इसलिये निरन्तर भगवान्‌की स्मृति रहे, वही काम करना चाहिये।

धन जोबन यों जायँगे जा बिधि उड़त कपूर।
नारायण गोबिन्द भज क्यों चाटे जगधूर॥

ऐसा विचारकर उस नारायणदेवका भजन-ध्यान करना चाहिये और भजन-ध्यान होनेके लिये उनके प्रेमी भक्तोंका संग करना चाहिये तथा कुछ शास्त्रोंका अभ्यास भी करना चाहिये।

मिलनेकी इच्छा लिखी, सो आपके प्रेमकी बात है। संसारके झंझटमेंसे कुछ समय निकालना चाहिये। समय बीता जा रहा है। उसे अनमोल काममें लाना चाहिये और विचारना चाहिये कि इतने दिनतक हमने क्या किया? यदि आगे भी इसी तरह समय बिता देंगे तो फिर श्रीभगवान्‌के दर्शन कैसे होंगे?

[५४]

आपके बहुत-से पत्र आये। आपके प्रश्न अधिक थे और मुझे समय कम मिल पाता है—इसी कारण आपको उत्तर देनेमें विलम्ब हुआ, इसके लिये आपको विचार नहीं करना चाहिये।

आपने पत्रमें मेरे लिये प्रशंसात्मक शब्द प्रयुक्त किये, सो नहीं करने चाहिये। इसके लायक तो भगवान् ही हैं। मुझको तो एक साधारण भाईके समान समझकर साधारण शब्द लिखने चाहिये।

आपने साकार प्रभुकी उपासना प्रारम्भ की, किन्तु प्रभुके दर्शन न होनेके कारण फिर निराकारकी उपासना आरम्भ कर दी और बादमें निराकारकी उपासना भी अपने लिये कठिन समझकर छोड़ दी और साकारकी शुरू कर दी—सो इस तरह एक साधनपर अविश्वास करके दूसरे साधनके लिये मनको चलायमान नहीं करना चाहिये। अपने निश्चयके अनुसार एवं महापुरुषोंके आज्ञानुसार एक ही साधनपर दृढ़ विश्वास करके तत्पर होकर लग जाना चाहिये। उपासना साकार एवं निराकार दोनों ही उत्तम हैं। इनमेंसे जिसमें आपको सुगमता मालूम पड़े, वही कर सकते हैं।

आपने लिखा कि भक्ति पूरी न भी हुई और दयालु हरिकी दया हो गयी तो वे स्वयं गरुड़ छोड़कर आयेंगे, सो ठीक है। भगवान्‌की दया तो है ही, परन्तु विशेष दया प्रेमीके प्रेमको देखकर होती है। उनका प्रेमी भक्त जब कुछ भी सहारा न पाकर अधीर होकर रो उठता है और भगवान्‌से मिलनेके लिये अपने-आपको भी भूल जाता है, तब भगवान् भी उसे दर्शन देकर कृतार्थ करनेके लिये उसके प्रेमके वश हो, गरुड़ तो क्या, प्यारीसे भी प्यारी वस्तुको भी छोड़कर तुरंत दौड़े आते हैं। आवश्यकता है उनमें अनन्यप्रेम होनेकी।

आपको श्री·····ने शिक्षाके विषयमें मुझसे पूछनेके लिये कहा, सो यह उनकी भावुकता है। मैं शिक्षा देनेका अधिकारी तो नहीं हूँ; परन्तु फिर भी आपलोगोंका प्रेम है—इस नाते कुछ लिख दिया करता हूँ।

आपने लिखा कि 'यहाँपर कतिपय ब्राह्मण विद्वान् होते हुए भी

मैथिलोंकी अपेक्षा अधिक मांसाहारी हैं, फिर भी मैं अपने ज्ञानानुसार लोगोंको गीता पढ़ाया करता हूँ, जिससे कुछ भाइयोंने तो हिंसा त्याग भी दी।' सो यह बहुत ही प्रशंसनीय कार्य है। हिंसा करनेवाले कुछ लोग आपसे प्रश्न करते हैं—लिखा, सो उनके प्रश्नोंका तथा आपके दूसरे पत्रके प्रश्नोंका उत्तर नीचे दिया जाता है।

(१) प्रश्न—जीव अजन्मा और अवध्य है, उसे भला कोई कैसे मार सकता है? इस पांचभौतिक शरीरके पाँचों तत्त्व अपने-अपने अंशमें मिल जाते हैं। आत्मा तो निर्विकार है, वह न किसीको मारता है, न मरवाता है; फिर लोग हिंसा किस प्रकार कहते हैं?

उत्तर—यह ठीक है कि जीव अजन्मा और अवध्य है, उसे कोई नहीं मार सकता तथा इस पांचभौतिक शरीरके पाँचों तत्त्व अपने-अपने अंशमें मिल जाते हैं; आत्मा निर्विकार है। वह न किसीको मारता है और न मरवाता है; परन्तु उस शुद्ध आत्माका जड शरीरके साथ संयोग होनेसे उस व्यष्टिचेतनकी जीव संज्ञा है। वह जीव अज्ञानसे इस पांचभौतिक शरीरके साथ सम्बन्ध माननेके कारण बँधा हुआ है तथा इसके सुख-दुःखके साथ सुखी-दुःखी होता है। अतः इस स्थूल शरीरसे प्राणोंका विच्छेद कर देना ही हिंसा है, लोग इस शरीरसे प्राणोंको जो अलग कर देते हैं, यही पाप करते हैं।

(२) प्रश्न—मनुष्य क्या कर सकता है? संसारमें जो कुछ होता है, सब ईश्वर ही करते हैं। इस विषयमें गीता अध्याय ११के ३३वें श्लोकका प्रमाण है। भगवान्‌ने कहा कि 'हे सव्यसाचिन्! ये तो मेरे द्वारा पहले ही मार दिये गये हैं; तू तो निमित्तमात्र बन!' फिर बकरोंको भी भगवान्‌द्वारा पहलेहीसे मारे गये क्यों न समझें? लोग तो निमित्तमात्र हैं।

उत्तर—श्रीभगवान्‌ने गीतामें ११वें अध्यायके ३३ वें श्लोकमें जो अपने द्वारा पहले ही मारे हुओंको मारनेके लिये अर्जुनको निमित्तमात्र बननेकी आज्ञा दी, सो तो उचित ही है। क्योंकि दुर्योधनके पास पाण्डवोंका राज्य और धन धरोहररूपसे था। उसको दुर्योधनने पाण्डवोंके माँगनेपर भी नहीं देना चाहा, बल्कि वह सेना एकत्र करके लड़नेको तैयार

हो गया; यहाँतक कि आजीवन पाण्डवोंका अनिष्ट ही करता रहा। इन सब कारणोंसे वह आततायी था; किन्तु बेचारे बकरे तो आततायी नहीं हैं, वे तो निरपराध हैं। उनको मारनेके लिये तो भगवान्ने ऐसा कहीं नहीं कहा कि ये मेरे द्वारा मारे हुए हैं, तुम इनको मारो, काटो और खाओ बल्कि शास्त्रोंमें निरपराध प्राणियोंको मारना पाप बतलाया है तथा उस कर्मके फलस्वरूप नरकयन्त्रणा भोगनी पड़ेगी—ऐसा कहा है। अत: जो लोग अपनी भोगवासनाकी पूर्तिके लिये निरपराध प्राणियोंकी हिंसा करते हैं, वे दण्डनीय होते हैं। इस पापके विषयमें भगवान् न तो कर्ता हैं और न प्रेरक ही। इसमें तो मनुष्यका काम ही हेतु है (गीता ३। ३७)।

(३) प्रश्न—भगवान्ने दूसरे अध्यायमें कहा है कि जो जन्मता है, वह मरता है और मरनेवालेका जन्म निश्चित है। इससे शरीर-वध होगा तो दूसरा नया शरीर मिल जायगा। अत: इसमें कौन किसकी हिंसा करते हैं?

उत्तर—भगवान्ने जो दूसरे अध्यायमें इस प्रकार कहा है, सो तो मोहके कारण हुई अर्जुनकी मान्यताके अनुसार कहा था। भगवान् तो ऐसा मानते ही नहीं। वे तो अर्जुनसे कहते हैं कि—'हे अर्जुन! यह जीव अवध्य है, अविनाशी है, किन्तु तुम यदि इसे विनाशशील मानते हो तो जो जन्मता है, वह मरता भी है तथा मरनेवालेका जन्म भी निश्चित है। अत: तुम्हारी मान्यतासे भी तुमको शोक नहीं करना चाहिये।' इसलिये भूलसे माननेवाला अज्ञानी जीव ही स्वार्थके कारण जीवोंकी हिंसा करता है।

(४) प्रश्न—गीताजीमें श्रीकृष्णने जब कि सम्पूर्णत: अहिंसा और अध्यात्मयोगका वर्णन किया तो फिर अर्जुन लड़नेको क्यों तैयार हो गया? जब युद्धमें अर्जुनके द्वारा ही इतनी हिंसा हुई और उसको हिंसक नहीं समझा गया तो फिर मांसाहारियोंको ही हिंसक क्यों माना जाता है?

उत्तर—गीतामें अहिंसावादका प्रतिपादन होते हुए भी न्याययुक्त हिंसाको हिंसा नहीं माना है। पाण्डवोंका युद्ध करके दुर्योधनादिको मारना न्याययुक्त इसीलिये है कि धरोहररूपसे रखे हुए राज्य और धनको पाण्डवोंके माँगनेपर भी न देना और उलटे डाकुओंकी तरह युद्ध करनेके

लिये तैयार हो जाना—यह अन्याय एवं अत्याचार है। पर बेचारे बकरे तो अन्यायी एवं अत्याचारी नहीं हैं, वे तो निरपराध हैं। अतः इनके मारनेवाले एवं खानेवाले सभी हिंसक समझे जाते हैं।

(५) प्रश्न—जो स्वयं मारते तो नहीं हैं, परन्तु बाजारसे मांस मोल लेकर खाते हैं, क्या वे भी हिंसक माने जाते हैं?

उत्तर—अवश्य। शास्त्रमें छः प्रकारके हिंसक माने गये हैं। १. स्वयं प्राणिवध करना, २. वध करवाना, ३. मांस बेचना, ४. मांस खरीदना, ५. मांस पकाना और ६. मांस खाना। अतः इनमेंसे कोई-सा भी हो, वह हिंसक ही समझा जाता है।

(६) प्रश्न—उरप्रेरक तो स्वयं भगवान् हैं, हमलोगोंसे जो कुछ होता है सब वे ही कराते हैं, फिर शास्त्र जीवपर दोष क्यों देते हैं?

उत्तर—शास्त्रोक्त न्याययुक्त प्रेरणा भगवान्‌की प्रेरणा है। शास्त्रसे विपरीत जो हमारे अन्तःकरणमें प्रेरणा होती है, वह भगवत्प्रेरणा नहीं है, उसका हेतु काम है—

अर्जुनके यह पूछनेपर कि—

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥

(गीता ३। ३६)

'हे कृष्ण! तो फिर यह मनुष्य स्वयं न चाहता हुआ भी बलात् लगाये हुएकी भाँति किससे प्रेरित होकर पापका आचरण करता है।'

श्रीभगवान्‌ने कहा—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥

(गीता ३। ३७)

'रजोगुणसे उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध है, यह बहुत खानेवाला अर्थात् भोगोंसे कभी न अघानेवाला और बड़ा पापी है, इसको ही तू इस विषयमें वैरी जान।' इसीलिये शास्त्रने जीवपर दोष लगाया है।

(७) प्रश्न—हिंसा किसे कहते हैं?

उत्तर—स्थूल देहसे प्राणोंके विच्छेद कर देनेका नाम हिंसा है।

(८) *प्रश्न*—आत्मा न जन्म लेता है न मरता है। न उसे सुख होता है तथा न दुःख ही। वह शुद्ध है। अतः वह पुण्य-पापका भागी भी नहीं होता। ग्रन्थकारोंने नरक, स्वर्ग तथा निर्वाणपदका वर्णन किसके लिये किया? उसका भागी कौन होता है?

उत्तर—आपका कहना ठीक है कि आत्मा न जन्मता है, न मरता है, न उसे सुख-दुःख ही होता है और न वह पुण्य-पापको भोगनेवाला ही है। किन्तु उस शुद्ध आत्मा और जड शरीरके संयोगसे व्यष्टि चेतनकी जीव संज्ञा है। उस जीवको ही यह सब सुख-दुःख तथा पाप-पुण्य आदिका फल होता है और नरक, स्वर्ग तथा निर्वाणपद आदिका भी जीवके लिये ही शास्त्रोंने वर्णन किया है। स्थूलदेहको जला देनेके बाद भी जीवका सूक्ष्मशरीरके साथ सम्बन्ध रहता है। जब महाप्रलय होता है, तब सूक्ष्मशरीर भी प्रकृतिमें विलीन हो जाता है। तब इसका सम्बन्ध प्रकृतिसे यानी कारणशरीरसे रहता है। जबतक जीवका कारणशरीरके साथ सम्बन्ध रहता है, तबतक जीवका आवागमन नहीं मिटता और उसको कर्मानुसार सुख-दुःखादि भोग भोगने पड़ते हैं। कारणशरीरका सम्बन्ध अनादि है और उसका हेतु अविद्या (माया) है। उस अविद्याका नाश ज्ञानसे होता है। ज्ञानकी प्राप्तिके लिये या तो ईश्वरकी भक्ति करनी चाहिये कि जिसकी कृपासे ज्ञानकी प्राप्ति होकर अविद्याका नाश हो—

श्रीभगवान्‌ने कहा है—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥*

(गीता ७। १४)

* क्योंकि यह अलौकिक अर्थात् अति अद्भुत त्रिगुणमयी मेरी माया बड़ी दुस्तर है; परन्तु जो पुरुष केवल मुझको ही निरन्तर भजते हैं, वे इस मायाको उल्लंघन कर जाते हैं; अर्थात् संसारसे तर जाते हैं।'

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥[१]

(गीता १०।१०)

अथवा महापुरुषोंकी शरण जाना चाहिये। उनकी कृपासे भी ज्ञानकी प्राप्ति होकर अज्ञानका नाश हो सकता है—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥[२]

(गीता ४। ३४)

उपर्युक्त श्लोकोंका विस्तारसे अर्थ गीता-तत्त्वांकमें देखना चाहिये।

(९) प्रश्न—यह पांचभौतिक शरीर तो यहीं नष्ट हो जाता है। फिर गीतामें दूसरे अध्यायके २२वें श्लोकमें '**वासांसि जीर्णानि**' इत्यादि किसके लिये कहा गया है?

उत्तर—इस पांचभौतिक शरीरको जला देनेके बाद भी जीवका सूक्ष्म-शरीरके साथ सम्बन्ध रहता है। इससे वह सूक्ष्मशरीराभिमानी जीव पुनः दूसरे नये शरीरको धारण कर लेता है। इसी विषयको समझानेके लिये '**वासांसि जीर्णानि**' इत्यादि कहा गया है।

(१०) प्रश्न—आत्मा तो आकाशवत् है। जब यह घट फूट जाता है तो आकाश-का-आकाश ही रह जाता है। कहीं घटके फूटनेसे आकाश भी नष्ट होता है? अथवा गंदे घड़ेका मैल क्या आकाशको भी मैला कर सकता है। यदि नहीं तो फिर इस शरीररूपी घटद्वारा किये हुए पुण्य-पापका भागी यह आत्मा कैसे होता है?

उत्तर—आपका कहना ठीक है कि आत्मा शरीररूपी घटद्वारा किये

१- 'उन निरन्तर मेरे ध्यान आदिमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तोंको मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं।'

२- 'उस ज्ञानको तू तत्त्वदर्शी ज्ञानियोंके पास जाकर समझ; उनको भलीभाँति दण्डवत् प्रणाम करनेसे, उनकी सेवा करनेसे और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक प्रश्न करनेसे वे परमात्मतत्त्वको भलीभाँति जाननेवाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्वज्ञानका उपदेश करेंगे।'

हुए पुण्य-पापका भागी नहीं होता; जीव होता है। क्योंकि आत्मा शुद्ध है, निर्लेप है और असंग है।

(११) प्रश्न—प्राण और आत्मामें क्या भेद है?

उत्तर—प्राण जड है और एक शरीरको त्यागकर दूसरे शरीरमें आता-जाता रहता है। आत्मा चेतन, ज्ञाता, साक्षी और अचल है।

(१२) प्रश्न—विशिष्टाद्वैतवादी श्रीरामानुजाचार्यके मतमें ईश्वर, जीव और माया पृथक्-पृथक् हैं तथा जीव मायासे छूटनेके लिये ईश्वरको भजता है, परन्तु श्रीशंकराचार्यके मतमें जीव और ईश्वरको एक माना है, सो क्या बात है?

उत्तर—श्रीरामानुजाचार्यका कथन द्वैतवादसे है तथा श्रीशंकराचार्यका कथन अद्वैतवादसे। अतः अपनी-अपनी दृष्टिसे दोनों ही आचार्योंका कहना ठीक है।

(१३) प्रश्न—भगवान्‌ने गीताके दूसरे अध्यायमें कहा कि 'हे अर्जुन! ये योद्धागण तुम्हारी निन्दा करेंगे। तुम्हारे लिये इससे बढ़कर दुःख और क्या हो सकता है?' तथा वे ही आगे चलकर कहते हैं कि 'जो निन्दा-स्तुति और मानापमानको बराबर समझता है, वह स्थिरधी है।' ऐसा क्यों?

उत्तर—भगवान्‌ने दोनों जगह अलग-अलग दृष्टिसे दो बातें कही हैं। पहली बात तो मान, बड़ाई और प्रतिष्ठा चाहनेवाले बद्ध जीवके विषयमें है तथा दूसरी मानापमानमें समताकी बात जीवन्मुक्त महापुरुषके विषयमें है।

(१४) प्रश्न—यज्ञशिष्ट भोजनको अमृत भोजन कहा गया है, परन्तु यज्ञशेष घृत क्यों नहीं खाया जाता?

उत्तर—यज्ञशिष्ट भोजनको अमृत भोजन कहा गया, सो ठीक है। यज्ञशेष घृत भी खा सकते हैं।

(१५) प्रश्न—जूआ भी तो ईश्वरका अंश है। फिर जूआ खेलना पाप क्यों है?

उत्तर—जूआ ही क्यों, जो कुछ भी है, सभी ईश्वरका अंश है तथा

सबको ईश्वरका रूप मानकर चाहे जो क्रिया करें, पापका भागी नहीं बनना पड़ता, क्योंकि ईश्वर सबमें हैं। ऐसी सर्वत्र समबुद्धि हो जानेपर मनुष्य राग-द्वेषसे रहित हो जाता है तथा राग-द्वेषसे रहित पुरुषके कर्म बन्धनके हेतु नहीं होते, वरं वे कर्म कर्म ही नहीं हैं—

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित् करोति सः॥*

(गीता ४।२०)

किन्तु यह भी निश्चय समझ लेना चाहिये कि ऐसे सर्वत्र समबुद्धिवाले राग-द्वेषरहित पुरुषसे कभी भी जूआ आदि पापकर्म हो ही नहीं सकते।

(१६) प्रश्न—वर्णव्यवस्थामें वीर्य प्रधान है या कर्म प्रधान?

उत्तर—वर्णव्यवस्थामें वीर्य तथा कर्म (आचरण) दोनों ही प्रधान हैं। जो जाति और आचरण दोनोंसे ब्राह्मण हो, वही उत्तम ब्राह्मण गिना जाता है। कोई जातिसे तो ब्राह्मण हो, पर उसके आचरण ब्राह्मणों-जैसे न हों तो भी वह पूरा ब्राह्मण नहीं तथा आचरणोंसे ब्राह्मण हो और जातिसे न हो तो भी ब्राह्मण नहीं कहला सकता। फिर भी दोनों प्रधान होते हुए भी जीविकानिर्वाहके लिये जाति प्रधान है तथा मुक्तिके लिये कर्म प्रधान है।

(१७) प्रश्न—मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीने क्षत्रिय होते हुए भी ब्राह्मण हनुमान्‌जीसे पाद सेवा क्यों करवायी?

उत्तर—हनुमान्‌जीसे पादसेवा करायी, सो तो उचित ही है। क्योंकि वास्तवमें हनुमान्‌जी योनिसे तो बन्दर ही थे, ब्राह्मण नहीं थे।

(१८) प्रश्न—बैगनकी उत्पत्ति कहाँसे है? तथा समाजमें विशेषकर विधवा और अन्य लोग इसे क्यों नहीं खाते?

---

* 'जो पुरुष समस्त कर्मोंमें और उनके फलमें आसक्तिका सर्वथा त्याग करके संसारके आश्रयसे रहित हो गया है और परमात्मामें नित्यतृप्त है, वह कर्मोंमें भलीभाँति बर्तता हुआ भी वास्तवमें कुछ भी नहीं करता।'

उत्तर—बैगनकी उत्पत्ति तो पृथ्वीसे ही है; परन्तु उसके बीजोंमें तामसीपन रहता है। अतएव पुराणोंमें इसका निषेध है। विधवा स्त्रियाँ तथा बहुत-से लोग इसे नहीं खाते, सो उचित ही है।

आपने श्रीगीताजीके प्रचारके लिये सप्ताह-गीताका प्रचार किया सो उत्तम बात है। वहाँके लोग हिन्दी नहीं जानते, अतः आप उनको गीता अपनी भाषामें समझाते हैं, सो बहुत ही प्रशंसनीय कार्य है और कई भाइयोंकी श्रीगीताजीमें श्रद्धा हो गयी, सो आनन्दकी बात है।

आपने लिखा कि अहिंसाके विषयपर पूर्ण विवेचन करके विस्तारसे लिखें, सो अहिंसाका विषय बहुत गम्भीर है; अतः पत्रद्वारा अधिक विस्तारसे समझाना कठिन प्रतीत होता है। इस विषयमें यदि आपका कभी सम्मुख मिलना हो तो विशदरूपसे समझाया जा सकता है। फिर भी आपकी प्रसन्नताके लिये सूत्ररूपसे लिख दिया गया है।

निरपराधी प्राणियोंके शरीरसे प्राणोंका वियोग करनेपर उसका इस शरीरसे सम्बन्ध छूटकर दूसरे नये शरीरसे सम्बन्ध होता है तो जीवको पहला शरीर छूटते तथा नया धारण करते समय बेहद दुःख होता है। इसी कारणसे हिंसाको पाप तथा अहिंसाको यानी किसी भी प्राणीको दुःख न पहुँचानेको परम धर्म माना गया है।

आपने लिखा कि अहिंसाका प्रकरण समझमें आ जानेसे कई भाई हिंसा करना छोड़ देंगे, सो ठीक है। इसके लिये ऊपर लिखा हुआ अहिंसाका विषय भाई लोगोंको समझा देना चाहिये।

[५५]

सप्रेम हरिस्मरण। आपके बहुत-से पत्र आये, जिनमें प्रश्न अधिक थे तथा उनका उत्तर देनेके लिये समय भी अधिक आवश्यक था, किन्तु मेरे पास समय बहुत कम रहता है, इसीलिये पत्रोत्तर देनेमें इतना विलम्ब हो गया, अतः इसके लिये विचार न करें। अब इसके लिये समय निकालकर आपके पत्रोंका उत्तर नीचे दिया जाता है—

आपने पत्रमें घर, कुटुम्ब तथा घरवालोंसे हठपूर्वक अपने अलग होनेके समाचार लिखे; सो मालूम किये।

आपने अपनेको प्रमेहकी बीमारीसे पीड़ित बतलाते हुए इसकी चिकित्साके लिये बहुत रुपया खर्च हो जानेपर भी आराम न होनेकी बात लिखी, सो मालूम की। इसके लिये वैराग्य और संयमपूर्वक ब्रह्मचर्यका पालन; पथ्य-परहेज एवं संयमसे रहना ही मुख्य ओषधि है।

आपने अपनी जन्मकुण्डली मुझे दिखाकर उचित सलाह लेनेके लिये लिखा, सो आपके प्रेमकी बात है; किन्तु जन्मकुण्डलीका न तो मुझे कोई विशेष ज्ञान ही है तथा आजकल जन्मकुण्डलीकी सारी बातें न मिलनेके कारण न मेरी इनपर विशेष श्रद्धा ही है। अतः आपको जन्मकुण्डली मेरे पास भेजनेके लिये प्रयास नहीं करना चाहिये।

आपने अपनेको शारीरिक अस्वास्थ्य तथा मन, बुद्धिका दुःखी बतलाया, सो इसके लिये भगवान्‌का भजन-ध्यान और स्तुति-प्रार्थना करनी चाहिये। उनकी कृपासे इनका नाश होकर आपके चित्तमें प्रसन्नता हो सकती है।

आपने लिखा कि मैं सब काम छोड़कर छबीले लालाको भजना चाहता हूँ; किन्तु यह काम प्रारम्भिक अवस्थामें आरम्भ न होनेके कारण अब मन अन्यत्र भटकता है। जप-ध्यान पूर्णरूपेण नहीं बनते हैं—इससे मुझको पश्चात्ताप भी है, सो मालूम किया। बीती हुई अवस्थामें साधन शुरू न किया तो कोई बात नहीं; अब भी बाकीकी अवस्थाको तो साधनमय ही बना देना चाहिये। न जाने मृत्यु कब अचानक आ उपस्थित हो जाय। यदि बाकीकी अवस्था भी यों ही गफलतमें चली जायगी तो

आगे इससे भी ज्यादा पछताना पड़ सकता है। पर, फिर क्या होगा? मनुष्य-जीवन, जो भगवान्‌को प्राप्त करनेका एकमात्र साधन था, वह यों ही खो दिया। अस्तु, अपने हृदयसे श्रद्धा और प्रेमकी कमीको हटाकर साधनके लिये तत्पर होकर लग जाना चाहिये। विवेक और वैराग्यबुद्धिसे मनको समझाकर तथा भजनको अमृतके समान समझकर श्रद्धा और प्रेमपूर्वक तत्परतासे निरन्तर भजन करना चाहिये। यदि इस प्रकार न हो सके तो भजनके लिये हठपूर्वक जी-तोड़कर परिश्रम तो करना ही चाहिये।

आपने लिखा कि कभी-कभी सच्चे प्रेम-बिन्दुका आभास अवश्य होता है; परन्तु वह लवमात्र होता है। अतः उसकी वृद्धिके लिये भजन और सत्संग करना उत्तम है।

आपने पूछा कि रसखान भक्तकी तरह छबीले लाला चंद दिनोंमें प्राप्त हो जायँ, यह लालसा कब पूर्ण हो? सो इसके लिये अनन्य श्रद्धा और प्रेमकी आवश्यकता है।

आपने मुझसे मिलनेकी इच्छा प्रकट की तथा मेरा एक फोटो माँगा, सो आपके प्रेमकी बात है; किन्तु फोटो भेजना मैं नीतिविरुद्ध मानता हूँ। अतएव इस विषयमें मैं लाचार हूँ।

आपने मेरी शरण लेनेके लिये लिखा, सो इस प्रकार नहीं लिखना चाहिये; क्योंकि मैं तो एक साधारण मनुष्य हूँ, शरण लेनेयोग्य तो एक परमात्मा ही हैं। उनकी शरण होनेसे वे सब कुछ कर सकते हैं।

आपके प्रश्नोंके उत्तर इस प्रकार हैं—

प्रश्न १—माला जपनेकी क्या विधि है? अर्थात् माला जपते समय किन-किन अँगुलियोंका मणिकेके साथ स्पर्श करें तथा एक माला पूर्ण होनेपर फिर किधरसे जपें?

उत्तर—मालापर जप करनेमें अँगूठा, मध्यमा और अनामिका इन तीनों अँगुलियोंको परस्पर मिलाकर मणिकासे स्पर्श होता है तथा प्रथम आरम्भ करते समय सुमेरुके पाससे आरम्भकर सुमेरुके पास ही जाकर

समाप्त करे; किन्तु सुमेरुको उल्लंघन नहीं करना चाहिये अर्थात् जो मणिका सबके अन्तमें फेरी गयी थी, फिर उसी मणिकासे आरम्भकर वापस सुमेरुतक लाना चाहिये।

प्रश्न २—माला जपते समय सुमेरु आते ही अड़चन-सी मालूम पड़ती है। क्या इस अड़चनको दूर करनेके लिये १,००० मणिकाओंकी माला बनवाकर उसपर जप सकते हैं?

उत्तर—माला जपनेमें सुमेरुके आनेपर अड़चन नहीं मालूम होनी चाहिये। कोई-कोई भाई १,००० मणिकाओंकी भी माला बनवाकर जप करते हैं किन्तु इसका विधान नहीं है। अतएव इसके लिये १०८ मणिकाओंकी माला ही उत्तम है।

प्रश्न ३—भगवान् श्रीकृष्णके नाम-जपके लिये माला तुलसी या चन्दनकी होनी चाहिये अथवा रुद्राक्षकी?

उत्तर—भगवान् श्रीकृष्णके नामका मन्त्र जपनेके लिये माला तुलसी और चन्दन दोनों प्रकारकी ही उत्तम मानी जाती हैं। रुद्राक्षकी माला तो श्रीशिवमन्त्रके जपके लिये विशेष उपयोगी समझी जाती है।

प्रश्न ४—यदि नाम-जप मालाद्वारा नहीं करें तो क्या कोई शास्त्रकी आज्ञाका उल्लंघन होगा?

उत्तर—नाम-जप यदि मालाद्वारा नहीं कर सकें तो अँगुलियोंके पोरुओंपर भी कर सकते हैं अथवा बिना संख्याके भी नाम-जप किया जा सकता है। इसमें शास्त्राज्ञाका कोई उल्लंघन नहीं होता।

प्रश्न ५—मालापर नाम-जप संख्यापूर्वक करना ठीक है या माला हाथमें लेकर बिना संख्याके प्रेमपूर्वक नाम-जप करना उत्तम है?

उत्तर—सकामभाव और निष्कामभाव दोनों प्रकारसे मालापर ही नाम-जप करना उत्तम है। निष्कामभावसे जप करनेमें यदि माला न भी हो तो कोई हर्जकी बात नहीं है; किन्तु फलकी इच्छा रखनेवालोंको तो कामना-सिद्धिके लिये मालापर ही मन्त्रका जप करना आवश्यक है।

प्रश्न ६—'कृष्ण' इस नामको मन्त्र मानकर प्रत्येक कार्यमें सिद्धिके उद्देश्यसे जप सकते हैं या नहीं?

उत्तर—जप सकते हैं।

प्रश्न ७—प्यारे श्रीकृष्णके प्रसन्नार्थ विधिपूर्वक षोडशोपचारसे पूजा किस प्रकार करनी चाहिये? कृपया इसे विस्तारसे लिखें।

उत्तर—इसका विधिपूर्वक विस्तार 'गीताप्रेस, गोरखपुर' से प्रकाशित 'श्रीप्रेमभक्तिप्रकाश' नाम्नी पुस्तिका मँगाकर उसमें देखना चाहिये।

प्रश्न ८—ग्रहोंकी शान्तिका सत्य और अटल उपाय क्या है?

उत्तर—ग्रहोंकी शान्तिके लिये शास्त्रोंमें जो जप, पूजा और अनुष्ठानादि बतलाये गये हैं, उन्हींको विधिपूर्वक करना चाहिये; किन्तु सब ग्रहोंकी शान्तिके लिये सबसे बढ़कर उपाय तो भगवान्‌का निष्कामभावसे प्रेमपूर्वक भजन करना ही है। यही सत्य और अटल उपाय है। इससे सब ग्रहोंकी शान्ति अपने-आप हो जाती है।

प्रश्न ९—

स्वहस्तग्रथिता माला स्वहस्तघृष्टचन्दनम्।
स्वहस्तलिखितं स्तोत्रं शक्रस्यापि श्रियं हरेत्॥

कृपया इस उपर्युक्त श्लोकका आशय समझाइये? इसके कर्ताने किस उद्देश्यसे अपने हाथकी गुँथी माला, अपने हाथका घिसा चन्दन और अपने हाथके लिखे स्तोत्रका निषेध किया?

उत्तर—इस श्लोकका तात्पर्य किसीके निषेधमें नहीं है, इसका अर्थ है—'अपने हाथसे गुँथी हुई मालापर जप करनेसे तथा अपने हाथसे घिसे हुए चन्दनका तिलक करनेसे और अपने हाथसे लिखे गये स्तोत्रके पाठसे (मनुष्य) इन्द्रके भी ऐश्वर्यको हरण कर लेता है?'

प्रश्न १०—भगवान्‌से याचना करनेपर याचक जो चाहता है, भगवान् वही दे देते हैं। अतः मैं ग्रहशान्ति चाहता हूँ, क्या भगवान् दे देंगे?

उत्तर—यदि इसमें आपका हित होगा तो भगवान् ग्रहशान्ति कर भी सकते हैं तथा इसमें आपका लाभ भगवान् न समझें तो न भी करें।

प्रश्न ११—मुझे स्वप्नमें अधिकतर लिंगेन्द्रियके दर्शन होते हैं। इसमें शिवजी मेरी ईश-आराधनामें रुकावट डालते हैं या मायाका प्रपंच है अथवा किसी बुरे समयकी सूचना है?

उत्तर—इसमें न तो शिवजी ही ईश-आराधनामें विघ्न डालते हैं और न यह मायाका प्रपंच ही है एवं न किसी बुरे समयका सूचक ही है। इसमें तो स्वभावका दोष ही स्वप्नमें भासित होता है। उसका सुधार करनेके लिये रात्रिको सोते समय गजेन्द्रमोक्ष, श्रीगीताजी अथवा श्रीविष्णु-सहस्रनामका पाठ करते-करते या भगवान्‌के नामका जप और ध्यान करते-करते सो जाना चाहिये। इससे बुरे स्वप्नोंका नाश हो सकता है।

प्रश्न १२—कृपया धैर्य-धारणका साधन बतलाइये?

उत्तर—मनसे विरुद्ध कोई घटना उपस्थित हो या मनसे प्रतिकूल किसी पदार्थकी प्राप्ति हो तो उसे अपने कर्मानुसार भगवान्‌का किया हुआ विधान या भगवान्‌का भेजा हुआ पुरस्कार मानना चाहिये। इस प्रकार माननेसे धैर्य-धारण हो सकता है और मनकी प्रसन्नता भी होती है।

प्रश्न १३—आप मेरे उद्धारका ध्यान भूल न जाइयेगा?

उत्तर—भगवान्‌की शरण होकर करुणा और प्रेमभावसे भगवान्‌से प्रार्थना और भजन-ध्यान करना चाहिये। इससे सहज ही उद्धार हो सकता है। मैं तो एक साधारण मनुष्य हूँ, किसीका उद्धार करनेकी मैं अपनेमें सामर्थ्य नहीं मानता। भगवान्‌की शरण होनेसे वे सब कुछ कर सकते हैं।

प्रश्न १४—भोजनमें टमाटर, बैगन, लहसुन, लौकी, प्याज, गोभी और गाजर आदि पदार्थ क्यों नहीं खाये जाते?

उत्तर—टमाटर और लौकी खानेमें तो कोई हर्ज नहीं है, गोभीमें जीवहिंसा होती है तथा लहसुन, प्याज, गाजर और बैगन इत्यादिको तामसी पदार्थ समझकर शास्त्रोंने निषेध किया है; क्योंकि इनको खानेसे अन्तःकरणकी वृत्तियाँ खराब होती हैं। इसलिये ये त्याज्य हैं।

प्रश्न १५—दिव्य शब्दका प्रयोग किन-किन लोकोंके विषयमें आता है, क्या नाशवान् स्वर्गलोकादि भी दिव्य हैं?

उत्तर—जो पदार्थ प्रकाशमान हो, अलौकिक हो, शुद्ध हो, ऐसे पदार्थके विषयमें दिव्य शब्दका प्रयोग किया जाता है। इस भूलोकके

देदीप्यमान शुद्ध पदार्थ भी दिव्य हैं; किन्तु इनकी अपेक्षा देवता और उनके भोग दिव्य हैं तथा ये सब ब्रह्माके प्रपंचके अन्तर्गत ही हैं। इन सबसे परम दिव्य भगवान्‌का स्वरूप और उनका धाम है, जो ब्रह्माके प्रपंचसे अत्यन्त विलक्षण और परम दिव्य है।

प्रश्न १६—इस ब्रह्माण्डके हरि, हर और ब्रह्मा—ये तीन देव ही मुख्य हैं तो अनेकानेक ब्रह्माण्डोंमें भी यही बात होगी?

उत्तर—स्वयं परमात्मा ही अनन्त ब्रह्माण्डोंमें ब्रह्मा, विष्णु और महेशके रूपमें संस्थित होते हैं।

प्रश्न १७—तुलसीदासजीने भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके विषयमें ***'रोम रोम प्रति राजहिं कोटि कोटि ब्रह्मांड'*** इस प्रकार कहा है, तो क्या श्रीकृष्ण और श्रीविष्णुभगवान्‌के विषयमें भी यही समझा जाय?

उत्तर—हाँ; तुलसीदासजीका भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके विषयमें ***'रोम रोम प्रति राजहिं कोटि कोटि ब्रह्मांड'*** यह मानना उचित ही है; क्योंकि भगवान् श्रीरामचन्द्र, श्रीकृष्ण एवं श्रीविष्णु पूर्णब्रह्म परमात्मा ही हैं। महासर्गके आदि सत्ययुगमें श्रीविष्णु, त्रेतायुगमें श्रीराम तथा द्वापरयुगमें श्रीकृष्णरूपसे वे ही प्रकट हुए हैं। जैसे तुलसीदासजीकी दृष्टिमें ***'रोम रोम'*** इत्यादि पद भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके विषयमें है, उसी प्रकार सूरदासजीकी दृष्टिमें श्रीकृष्णके एवं ध्रुवकी दृष्टिमें श्रीविष्णुभगवान्‌के विषयमें समझना चाहिये।

प्रश्न १८—यदि भगवान्‌के अनन्यभक्त अपने-अपने इष्टके सिवा अन्य किसीको नहीं चाहते तो श्रीराम, श्रीकृष्ण एवं श्रीविष्णुके उपासक उनके पृथक्-पृथक् लोकोंको प्राप्त होते होंगे?

उत्तर—नहीं; भगवान्‌का जो परम नित्यधाम है, वही भगवान् श्रीरामके भक्तोंके लिये साकेतलोक, श्रीकृष्णके भक्तोंके लिये वही गोलोक एवं श्रीविष्णुके भक्तोंके लिये वही वैकुण्ठधाम है।

प्रश्न १९—गीताडायरीको भले-बुरे हाथोंका स्पर्श होता है तो इसमें कोई अपराध तो नहीं है?

उत्तर—अपराध तो कुछ भी नहीं है; क्योंकि श्रीगीताको डायरीका रूप दे रखा है। फिर भी अपवित्र हाथ लगानेसे बचाना ही अच्छा है।

प्रश्न २०—सुपात्रको दान दिया जाय फिर वही सुपात्र यदि कुपात्र बन जाय तो इसमें दाता अपराधी हुआ या दान लेनेवाला?

उत्तर—जो दान लेते समय सुपात्र है फिर वही यदि कुपात्र बन जाय तो दान देनेवालेका इसमें कोई दोष नहीं। लेनेवाला तो कर्मोंका फल भोगेगा ही।

प्रश्न २१—जब आत्मा अमर है तो फिर हिंसा क्यों नहीं करनी चाहिये?

उत्तर—आत्मा अमर होनेपर भी मरनेवाले प्राणीको दुःख होता है, इसीलिये मारनेवालेको पाप लगता है। अतएव हिंसा नहीं करनी चाहिये।

प्रश्न २२—योगसाधनाद्वारा आयुकी वृद्धि तथा देह दिव्य हो सकता है या नहीं? शरीर दिव्य होनेपर फिर क्या यह पांचभौतिक देह नहीं रहेगा? विधाताके नियम आयुवृद्धि होते-होते कर्कशता तो धारण नहीं करेंगे?

उत्तर—योगसाधनाद्वारा आयुकी वृद्धि तथा शरीर दिव्य हो सकता है; परन्तु इस प्रकारका योग सिखलानेवाले योगीका इस समय मिलना असम्भव-सा है तथा शरीरकी दिव्यता भी परम दिव्यता नहीं है, बल्कि अपेक्षा कृत साधारण दिव्यता है, अतः शरीर दिव्य होनेपर भी यही पांचभौतिक देह कायम रहेगा। आपका विधाताविषयक प्रश्न मेरी समझमें नहीं आया।

प्रश्न २३—प्रारब्धका नाश कब हो सकता है?

उत्तर—प्रारब्धका नाश प्रारब्धके भोग, प्रायश्चित्त तथा ईश्वर और महापुरुषोंके प्रसादसे हो सकता है।

प्रश्न २४—मनुष्य देवताओंकी तरह तेजस्वी और अक्षय किस तरह बन सकता है?

उत्तर—योगसाधन एवं ईश्वरकी अनन्य शरण होनेपर ईश्वरकी दया होनेसे बन सकता है।

प्रश्न २५—क्या देवता आत्मसाक्षात्कार नहीं कर सकते?

उत्तर—देवयोनि भोगयोनि है, इसलिये उनका मुक्तिमें अधिकार नहीं है; किन्तु ईश्वरकी विशेष कृपासे वे भी कर सकते हैं।

प्रश्न २६—क्या सुख भी दुःखकी तरह जबरन् भोगना पड़ता है?

उत्तर—हाँ, सुख भी दुःखकी तरह बलात्से प्राप्त हो सकता है; किन्तु साधक चाहे तो सुखका त्याग भी कर सकता है।

प्रश्न २७—आजकल आकाशवाणी क्यों नहीं होती?

उत्तर—श्रद्धा, भक्ति और आस्तिकभावकी कमीके कारण इस घोर कलिकालमें आकाशवाणी होनेका नियम नहीं है।

प्रश्न २८—क्या रेडियो स्वर्गतक पहुँच सकता है?

उत्तर—शब्द आकाशका गुण होनेसे वह आकाशमें सब जगह व्यापक हो जाता है; किन्तु स्वर्गमें इस यन्त्रका सम्बन्ध नहीं है, इस कारण वहाँ रेडियो नहीं पहुँच सकता।

प्रश्न २९—ईश्वरने संसार-वैचित्र्य किसलिये बनाया है? यदि विनोदके लिये बनाया तो अनेक जीवोंको दुःखी बनाना विनोद नहीं है, यह तो निर्दयता है।

उत्तर—संसार-वैचित्र्य बनानेमें ईश्वरका न तो विनोद ही है तथा न उनकी निर्दयता ही है। परन्तु जीवोंके कर्म ही विचित्र हैं; उनको उनके कर्मोंके अनुसार फल भुगतानेके लिये ही यह संसार बनाया गया है।

प्रश्न ३०—जब सबसे पहले सृष्टि हुई थी तो सभी जीव एक-से कर्म करनेवाले हुए होंगे?

उत्तर—सृष्टिके आरम्भका प्रश्न शास्त्र, युक्ति एवं न्यायविरुद्ध है; क्योंकि सृष्टि अनादि है, इसकी कभी शुरुआत नहीं है। इसलिये कर्मकी विचित्रता भी अनादि है।

प्रश्न ३१—पतन होनेकी बुद्धि कहाँसे प्राप्त होती है?

उत्तर—अविद्या, अहंकार, राग और द्वेष आदि दुष्ट स्वभावसे तथा नीच पुरुषोंके संगसे पतन होनेकी बुद्धि प्राप्त होती है।

प्रश्न ३२—ईश्वरेच्छा प्रत्येक बातमें लागू क्यों नहीं होती? जैसे सुख-दुःख और उत्पत्ति-प्रलय आदि।

उत्तर—ईश्वरेच्छा सभीमें लागू होती है; किन्तु ईश्वरका अपना कोई

निजी स्वार्थ न होनेके कारण उनकी इच्छा शुद्ध होती है और जीवोंके हितके लिये ही जीवोंको कर्मानुसार फल भुगतानेके निमित्त होती है।

प्रश्न ३३—'**गहना कर्मणो गतिः**' क्या यह बात मुक्त पुरुषके लिये भी लागू है?

उत्तर—मुक्त पुरुषके लिये यह बात लागू नहीं है; क्योंकि मुक्त पुरुष इसके रहस्यको जानता है। इसके विशेष विस्तारके लिये 'गीतातत्त्वांक' में चौथे अध्यायके १७-१८वें श्लोकोंका अर्थ देखना चाहिये।

प्रश्न ३४—स्वर्गमें साम्यवाद है या अपना-अपना कर्मभोग?

उत्तर—स्वर्गमें साम्यवाद नहीं है; वहाँ तो कर्मोंके अनुसार दिव्य भोग भोगे जाते हैं। यथार्थ शुद्ध साम्यवाद तो भगवान्‌के नित्य परमधाममें है।

प्रश्न ३५—आजकल-जैसे आश्चर्यप्रद आविष्कार क्या कभी पहले भी हुए थे?

उत्तर—हिरण्यकशिपु तथा रावण आदि असुर और राक्षसोंके समयमें तो इससे भी बढ़कर थे। क्योंकि वे इच्छानुसार अनेक रूप धारण कर लेते थे तथा अन्तर्धान होना और फिर प्रकट होना इत्यादि भी कर सकते थे।

प्रश्न ३६—भगवान्‌ने जब तीन सुन्दर-सुन्दर युगोंका निर्माण किया तो फिर इस दानवराज कलिकी सृष्टि इस प्रकार क्यों की? यदि इस कलिकालमें '**हरेर्नामैव केवलम्**' इससे कल्याण समझकर की तो फिर सभी लोग सदाचारी क्यों नहीं हैं? इसपर इस समय होनेवाले पापोंसे यदि पृथ्वी भूकम्प करके जीवोंका संहार कर दे तो क्या कोई हिंसा है?

उत्तर—पता नहीं। यह सब ईश्वरकी दिव्य लीला है।

प्रश्न ३७—अप्सराएँ वेश्या हैं या अलग जाति हैं?

उत्तर—वे वेश्याएँ नहीं हैं, अप्सरा ही हैं। इनमें यही अन्तर है कि वेश्या तो स्वेच्छासे पापकर्म करके पतनका मार्ग बनाती है तथा अप्सराएँ ईश्वरके विधानसे स्वर्गमें रहनेवाले प्राणियोंको दिव्य भोग भुगतानेके लिये बनायी गयी हैं।

प्रश्न ३८—विदेह नगरीमें वेश्याएँ भी रहती थीं। फिर उस समय राजा जनकने उन्हें निकलवा क्यों नहीं दिया, जिससे कि लोगोंका पतन होनेसे बचाव होता?

उत्तर—उस समयकी परिस्थितिसे हम जानकार नहीं हैं, अतः इसका उत्तर राजा जनक ही दे सकते हैं।

प्रश्न ३९—स्तोत्रपाठ तथा स्वाध्याय मनमें करना चाहिये या कुछ उच्चारणसे?

उत्तर—दोनों प्रकार कर सकते हैं; किन्तु उच्चारण करके करना उत्तम है। क्योंकि मनमें करनेसे अशुद्धि रहनेकी सम्भावना है?

प्रश्न ४०—श्रीगोपालसहस्रनाम, विष्णुसहस्रनाम, गीता, रामायण और श्रीमद्भागवत इत्यादि क्या दुर्गासप्तशतीकी तरह कीलित हैं?

उत्तर—यह सब तन्त्रवादी और फलकी इच्छा रखकर कर्म करनेवालोंके लिये ही कीलित हैं। निष्कामभावसे भगवदर्थ कर्म करनेवाले भक्तोंके लिये नहीं।

प्रश्न ४१—जल्दी-से-जल्दी काम बन जाय, इस भावनासे भगवान् श्रीकृष्णके लिये स्तोत्रपाठ, स्वाध्याय, श्रवण, जप, ध्यान, चिन्तन और विधिवत् षोडशोपचारसे पूजा किस तरह करनी चाहिये?

उत्तर—पत्रद्वारा इसे विस्तारसे समझाना कठिन है, कभी प्रत्यक्ष मिलना हो तो पूछ सकते हैं।

प्रश्न ४२—आराधनक्रम नित्य नियमपूर्वक आनन्दसे निभ सके, इसके लिये मुझे कौन-से शुभ दिनमें आराधना प्रारम्भ करनी चाहिये?

उत्तर—जिस दिन दिलमें श्रद्धा, प्रेम और उत्साह हो, उसी दिन आरम्भ कर देनी चाहिये; क्योंकि इसके लिये वही शुभ मुहूर्त है।

प्रश्न ४३—भगवान्‌के घरमें देर है, इसलिये अंधेर है; इसका क्या कारण है?

उत्तर—आपने भगवान्‌के घरमें देरको अंधेर कहा सो उचित नहीं है; क्योंकि भगवान्‌के घरका फैसला सर्वथा यथार्थ होता है। वहाँ अंधेर नहीं है; पर यदि देर है तो उस देरमें भी जीवोंका हित ही भरा हुआ होता है।

प्रश्न ४४—भगवान् जो करते हैं अच्छा ही करते हैं, फिर क्या वर्तमान महासमर भी भगवान्‌का ही विधान है?

उत्तर—जब-जब पृथ्वीपर पापियोंकी वृद्धिके कारण भार हो जाता है, तब-तब पृथ्वीका भार उतारनेके लिये भगवान् कोई-न-कोई निमित्त बना देते हैं। अतः वर्तमान समयका महायुद्ध भी पृथ्वीका भार उतारनेके लिये भगवान्‌का ही विधान है।

प्रश्न ४५—भजन करनेके लिये भगवान्‌ने जब मनुष्यदेह बनायी तो फिर माया पीछे क्यों लगायी?

उत्तर—माया तो अनादिकालसे पीछे लगी हुई है, भगवान्‌ने पीछेसे नहीं लगायी।

प्रश्न ४६—संवत् २००० के अन्तर्गत विश्वमें क्या कोई भारी परिवर्तन होनेवाला है?

उत्तर—धन-जनका नाश और राज्यका परिवर्तन हो रहा है तथा और भी हो सकता है। इसके अतिरिक्त किसी अच्छे परिवर्तन होनेकी या सत्ययुग आनेकी आशा तो नहीं है।

प्रश्न ४७—भगवद्दर्शन प्रारब्धसे होता है या पुण्य-कर्मसे अथवा भगवदिच्छासे?

उत्तर—श्रद्धा और प्रेमपूर्वक भगवान्‌का भजन, ध्यान करनेसे एवं भगवान्‌की दयासे भगवान्‌का दर्शन हो सकता है।

प्रश्न ४८—ज्योतिःस्वरूप भगवान्‌का क्या स्वरूप है? क्या वे सबसे अगम्य एवं दुर्भेद्य आदि स्थानमें विराजते हैं?

उत्तर—भगवान्‌का ज्योतिःस्वरूप ज्ञानमय है, वे आकाशके समान सभी जगह विराजते हैं।

प्रश्न ४९—ज्योतिःस्वरूप भगवान्‌का चिन्तन किस प्रकार करना चाहिये?

उत्तर—ज्योतिःस्वरूप भगवान्‌का चिन्तन 'गीतातत्त्वांक' में आठवें अध्यायके नवें और तेरहवें अध्यायके सत्रहवें श्लोकका विस्तृत अर्थ देखकर तदनुसार करना चाहिये।

प्रश्न ५०—श्रद्धा और विश्वास अडिग, अचल एवं पुष्ट किस प्रकार बने रह सकते हैं?

उत्तर—भगवान्‌के गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्य, लीला, धाम, महिमा, श्रद्धा और प्रेमके विषयका महापुरुषोंद्वारा बार-बार श्रवण या सच्छास्त्रोंका मननपूर्वक स्वाध्याय करनेसे श्रद्धा और विश्वासकी दृढ़ता हो सकती है।

प्रश्न ५१—विश्वकी विचित्र कारीगरी भगवान्‌की लीलासे ही हुई है या प्राणियोंके कर्मफलसे?

उत्तर—विश्वकी नाना प्रकारकी रचनामें प्राणियोंका कर्मफल ही प्रधान है। ईश्वरकी लीला तो निमित्तमात्र है।

प्रश्न ५२—जगत्‌की सुन्दरता मनको मोहित करके फिर विरह देती है। यह स्वभावतः है या हमारे मिथ्या मोहसे?

उत्तर—इसमें मिथ्या मोह ही हेतु है।

प्रश्न ५३—किसी प्राणिविशेषसे आसक्तिपूर्वक प्रेम होना प्राचीन संस्कारसे है या इसमें मनका मोहरूप दोष एवं मनकी दुर्निग्रहता हेतु है?

उत्तर—इसमें अन्तःकरणके संस्कार, मनकी दुर्निग्रहता और मोह तीनों ही हेतु हैं।

प्रश्न ५४—कर्मबन्धन कैसे मिटे?

उत्तर—परमात्माके तत्त्वका यथार्थ ज्ञान एवं परमात्माकी प्राप्ति होनेसे कर्मका बन्धन मिट सकता है।

प्रश्न ५५—क्रोध और विषाद त्यागनेके क्या उपाय हैं?

उत्तर—निष्काम प्रेमभावसे भगवान्‌के नामका जप, उनके स्वरूपका ध्यान, सत्संग और दुःखियोंकी सेवा करनेसे तथा प्रत्येक घटनामें भगवान्‌का विधान माननेसे क्रोध और विषादका अत्यन्ताभाव हो सकता है।

प्रश्न ५६—जीवनमें अनर्थ, बड़ी-बड़ी गलतियाँ एवं किसीका अहित न हो, इस भावसे भगवान्‌से प्रार्थना करनेपर क्या भगवान् उनका नाश कर सकते हैं?

उत्तर—निश्चय कर सकते हैं।

प्रश्न ५७—भगवान्‌की कृपाका अनुभव कैसे हो?

उत्तर—जो कुछ बिना इच्छा आकर प्राप्त हो जाय उसमें ईश्वरका दयापूर्ण विधान समझकर प्रसन्न रहनेसे तथा भजन और सत्पुरुषोंका संग करनेसे भगवान्‌की कृपाका अनुभव हो सकता है।

प्रश्न ५८—हिंसा तो सभी प्राणियोंसे होती है। क्या ईश्वर इससे अलग हैं?

उत्तर—आरम्भमात्र ही दोषयुक्त होनेके कारण किसी-न-किसी रूपमें हिंसा सभी प्राणियोंसे हो ही जाती है; किन्तु ईश्वर हिंसासे अत्यन्त दूर है तथा ईश्वरके कर्म दिव्य और अलौकिक होनेके कारण वे कर्म कर्म ही नहीं हैं, इसलिये उनके कर्मोंमें प्रतीत होनेवाली हिंसा हिंसा ही नहीं है; क्योंकि उनका किसी भी कर्ममें आसक्ति और कर्तापनका अभिमान नहीं है। इसका विस्तृत विवरण 'गीतातत्त्वांक' के चौथे अध्यायके १३ और १४वें श्लोकोंके अर्थमें देखना चाहिये।

प्रश्न ५९—क्या सूरसागरमें कहींपर ऐसा पद आया है कि संवत् २००० के पश्चात् ८० वर्षके लिये सत्ययुगकी झलक होगी तथा रावणका पुत्र मेघनाद विश्वमें एकच्छत्र राज्य करेगा?

उत्तर—पता नहीं।

प्रश्न ६०—भौतिक विज्ञान और ईश्वरेच्छा—इनमें क्या सम्बन्ध है?

उत्तर—कोई सम्बन्ध नहीं है।

प्रश्न ६१—मुझे बायें कानसे तो घण्टा नाद-जैसे शब्द सुनायी देता है, किन्तु दाहिने कानसे अभ्यास करनेपर भी सुनायी नहीं देता, सो इसमें क्या कारण है?

उत्तर—मालूम नहीं।

प्रश्न ६२—शुकदेवजीकी तरह जो योगी इस प्रपंचसे अलग होकर विचरण करते हैं, वे लोमशजी अथवा काकभुशुण्डिजीकी तरह एक जगह रहकर भजन क्यों नहीं कर सकते?

उत्तर—यह प्रश्न युक्तिसंगत नहीं है; क्योंकि शुकदेवजी भी एक जगह रहकर भजन किया करते हैं।

प्रश्न ६३—मैं यह चाहता हूँ कि जैसे जल बिना मछलीकी दशा होती है, वैसी भगवान्‌के वियोगमें मेरी दशा हो जाय, सो कैसे हो?

उत्तर—परम प्रेम और अनन्यश्रद्धा होनेसे इस प्रकारकी दशा हो सकती है।

[५६]

प्रणाम। आपका पत्र यथासमय मिला। आपने मुझे 'पूज्य संत महाराज' आदि लिखा, सो ऐसा लिखकर आपको मुझे संकोचमें नहीं डालना चाहिये। मैं तो एक साधारण मनुष्य हूँ। हाँ, मेरी यह चेष्टा अवश्य रहती है कि लोग भगवान्‌की ओर प्रवृत्त हों, भगवान्‌में प्रेम बढ़े, भक्ति बढ़े, सदाचारका प्रचार हो, सात्त्विक वृत्तियोंका विकास हो। इसलिये जो भी भगवान्‌की भक्तिमें प्रवृत्त होते हैं और पवित्र जीवन व्यतीत करना चाहते हैं, वे मुझे प्रिय लगते हैं। हमारा-आपका सम्बन्ध मित्रताका ही होना चाहिये।

मैंने आपको पहले भी लिखा था और पुनः लिख रहा हूँ कि माता-पिताकी आज्ञामें रहकर ही साधन-भजन करना चाहिये और इधर-उधर भागकर नहीं जाना चाहिये। माता-पिताके आदेशकी अवहेलना करके काशी जानेकी अपेक्षा उनकी आज्ञा और आदेश मानकर घरमें रहकर साधन-भजन करना अधिक श्रेयस्कर है।

आपको विद्याध्ययन आदिसे समय कम मिलता है और इसलिये आप पूर्णतः सारा समय साधन-भजनमें नहीं लगा सकते—इस बातको लेकर मनको दुःखी नहीं कर लेना चाहिये। आपको अध्ययनसे जितना भी अवकाश मिले, उसे अवश्य साधन-भजनमें लगाना चाहिये और शेष समयमें निरन्तर भगवान्‌का स्मरण करते हुए अपना कार्य करना चाहिये। स्वयं भगवान्‌ने (गीता अध्याय ८, श्लोक ७ में) कहा है—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥

'इसलिये अर्जुन! तू सब समयमें निरन्तर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर; इस प्रकार मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिसे युक्त होकर तू निःसन्देह मुझको ही प्राप्त होगा।'

मुख्यबुद्धिसे भगवत्स्मरण और गौणबुद्धिसे अन्य सारे कार्य किस प्रकार किये जा सकते हैं, इसके लिये विशेष युक्तियाँ 'गीतातत्त्वांक' में आठवें अध्यायके सातवें श्लोकपर लिखित व्याख्यामें देखनी चाहिये। उससे आपका पूरा समाधान हो जानेकी आशा है। आपको सवा दो घंटेका जो समय मिलता है, उसका अधिक-से-अधिक उपयोग करना चाहिये और शेष समयमें भगवान्‌का स्मरण करते हुए ही अपना निर्दिष्ट कर्तव्य करना चाहिये।

हरि-नाम बिना मनुष्य वैसा ही है, जैसा दीपकके बिना मन्दिर—आपका यह लिखना सर्वथा सत्य है। अतएव आप नाम-साधनामें अधिक-से-अधिक लगिये।

आप 'राम-कृष्ण-हरि'—नामका जप करते हैं—यह बड़ी उत्तम बात है। इसे अधिक-से-अधिक बढ़ाइये। इन्हीं नामोंका यह मन्त्र है—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

इस मन्त्रमें 'राम-कृष्ण-हरि'—इन नामोंके सोलह नाम आते हैं। कलिसन्तरणोपनिषद्‌में इस महामन्त्रकी बड़ी महिमा कही गयी है। अस्तु, आप इसी महामन्त्रका आश्रय लें तो बहुत उत्तम होगा।

आपके प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है—

(१) इस कलियुगमें भगवान्‌का दर्शन अवश्य हो सकता है—भगवत्कृपासे, भगवत्प्रेमसे।

(२) भगवान्‌के चौबीस अवतारोंमें श्रीराम और श्रीकृष्ण इसलिये मुख्य हैं कि इनके द्वारा साधुओंका उद्धार, पापियोंका संहार और धर्मकी स्थापना विशेषरूपमें हुई। भगवान्‌के अवतारका यही उद्देश्य है और इन

उद्देश्योंकी पूर्ति विशेषरूपसे राम और कृष्णके अवतारोंमें ही हुई। गीता अध्याय ४ श्लोक ८ देखिये—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

इस श्लोकपर 'गीतातत्त्वांक' में प्रकाशित भाष्य देखना चाहिये।

(३) नाम जपते-जपते भगवान्‌का दर्शन अवश्य प्राप्त होता है। नाम जपते-जपते भक्त प्रेमसे भगवान्‌में तन्मय—तल्लीन हो जाता है। उदाहरणके लिये श्रीगौरांग महाप्रभुका उदाहरण बहुत उत्तम है।

(४) प्रह्लाद, शुकदेवकी तरह हमें भी भगवान् मिल सकते हैं, यदि हम उनकी तरह दत्तचित्त होकर साधना करें। भगवान्‌की दया और कानून सबके लिये समान हैं; फिर हमलोग उनके शरण होकर प्रयत्न करें तो दर्शन क्यों नहीं हो सकता? क्योंकि उनकी कृपा तो नित्य सबके लिये समान है।

(५) मल-मूत्रत्याग करते समय भगवान्‌के 'राम-कृष्ण-हरि' आदि नामोंका उच्चारण मन-ही-मन कर सकते हैं—वैदिक मन्त्रोंका नहीं। वैदिक मन्त्रोंके उच्चारणके लिये सर्वथा शुद्ध रहना अनिवार्य है।

(६) 'हरे राम०' मन्त्रका प्रेमसे जप करनेपर भगवान् अवश्य मिल सकते हैं। कब मिलते हैं, यह तो भगवान् ही जानते हैं। भक्तकी समस्त हितकर इच्छाओंको भगवान् पूरा करते ही हैं।

(७) केशव विष्णुभगवान्‌का ही नाम है।

(८) भगवान्‌के कल्कि अवतारमें चार लाख वर्षसे भी अधिककी देर है।

(९) यह बतलाना कठिन है कि गीताप्रेसमें किसीको भगवान्‌का साक्षात्कार हुआ है या नहीं। जिसे साक्षात्कार होता है, वह बतलाता नहीं और जो बतलाता है, उसपर श्रद्धा नहीं होती। यह तो स्वसंवेद्य विषय है इसलिये कहना कठिन है कि किसे ईश्वर-साक्षात्कार हुआ है, किसे नहीं।

(१०) काशीमें मरनेसे अवश्यमेव मुक्ति होती है, क्योंकि

इसमें शास्त्रवचन प्रमाण है। शास्त्रोंमें श्रद्धालुओंको विश्वास रखना चाहिये।

(११) मृत्युके समय नामका स्मरण या स्वरूपका ध्यान—दोनों या दोनोंमें कोई एक भी हो तो मुक्ति हो जाती है।

(१२) अनन्यभक्ति करनेवाला जिस प्रकारकी मुक्ति चाहता है, वैसी ही मुक्ति उसे मिलती है।

(१३) गायत्रीका जप सब प्रकारसे पवित्र होकर करना चाहिये। भगवन्नामका जप किसी भी अवस्थामें किया जा सकता है।

(१४) मिथ्याकी अपेक्षा मौन उत्तम है। मौनसे भी सत्य बोलना श्रेयस्कर है।

(१५) सच्चिदानन्द परमात्माके ही ब्रह्मा-विष्णु-महेश आदि अनेक रूप हैं। अतः विष्णु ही शिव हैं, शिव ही विष्णु हैं। इनमें अभेदबुद्धि रखते हुए अपने इष्टदेवमें अनन्यभाव रखना चाहिये और उसीकी उपासना करनी चाहिये।

[५७]

प्रेमपूर्वक हरिस्मरण! आपका पत्र यथासमय मिला, समाचार विदित हुए। आपने एक संन्यासीके विषयमें लिखा, सो मैं उनके व्यक्तित्वसे तो परिचित नहीं हूँ; परन्तु आपके समाचारोंसे यह बात समझमें आती है कि वे भी सम्भवतः कोई वैसे ही बने हुए संन्यासी होंगे, जो धर्मप्रचारके बहाने अपनी भोगवासनाओंकी पूर्ति करनेकी इच्छासे घूमा करते हैं।

गीता-जयन्तीके उत्सवपर कुछ लोगोंने उनको व्याख्यान देनेके लिये बुला लिया, यह अवश्य गलती हुई। आजकलके अन्धश्रद्धालु भोले भाई प्रायः इसी तरहकी भूल कर बैठते हैं। यदि वे हमारे ऋषि-मुनियोंद्वारा रचित आर्ष ग्रन्थोंका भाव समझते होते तो ऐसी गलती नहीं करते।

आपने लिखा कि कितने ही गीताप्रेसकी पुस्तकें पढ़नेवाले भाइयोंने भी उक्त संन्यासीको अपना गुरु बनाया है; इससे तो यही समझमें आता है कि वे लोग हमारी प्रार्थनाका और गीताप्रेसकी पुस्तकोंका भाव अभीतक नहीं समझ पाये हैं। समझ लेते तो ऐसी गलती नहीं करते।

आपने पूछा कि ऐसे संन्यासीको जिन्होंने गुरु मानकर उनसे गुरु-मन्त्र ले लिया है, वे लोग क्या उस गुरुका त्याग कर सकते हैं? इसके उत्तरमें इतना ही कहना पर्याप्त है कि अपनी गलतीका सुधार करनेके लिये मनुष्य सदा ही स्वतन्त्र है। वास्तवमें गुरु तो वही है, जो अपने शिष्यको संसार-चक्रसे निकालकर कल्याणकी ओर अग्रसर करे। नहीं तो फिर वह गुरु ही कैसा? कालनेमि भी तो हनुमान्जीका गुरु बना था? क्या उन्होंने उसका कुछ मुलाहिजा रखा?

आपने पूछा कि दूसरा कोई भाई उनको गुरु बनानेके लिये पूछे तो उसको क्या कहना चाहिये। इसका यह जवाब है कि ऐसे भोले भाईको सच्चे गुरुओंके लक्षण और सदाचारसे परिचय कराकर वैसे गुरुकी खोज करनेके लिये कहना चाहिये और ढोंगियोंसे बचनेके लिये सावधान कर देना चाहिये।

संन्यासीजीके उपदेशका जो अंश आपने क्रमसे लिख भेजा है, उसका क्रमशः उत्तर इस प्रकार है—

(१) प्रारब्धके अनुसार जो कुछ प्राप्त हो, उसे भोग लेनेमें पापका तो कोई सवाल ही नहीं उठता, क्योंकि प्रारब्धभोग तो पुण्य और पापरूप पूर्वकृत कर्मोंका फल है, उसे भोगनेके लिये तो प्राणी-मात्र बाध्य है; परन्तु इसमें समझनेकी बात इतनी ही है कि प्रारब्ध-भोगके निमित्त मनुष्य निषिद्ध आचरण करनेके लिये बाध्य नहीं है। अपने वर्णाश्रमोचित विहित कर्मोंका आचरण करते हुए ही उसे प्रारब्धके भोग अपने-आप मिलेंगे। उस सुख-दुःखरूप प्रारब्ध-भोगको राग-द्वेषके बिना भोगते रहकर परमात्माको प्राप्त करनेके साधनमें लगे रहना ही मनुष्यका कर्तव्य है। पुण्यकर्मके फलरूप सुख-भोगोंका त्याग करनेमें मनुष्य उसी प्रकार स्वतन्त्र है, जैसे धनी पुरुष अपने धनका त्याग करनेमें। मनुष्य-जन्मका महत्त्व भोगोंका त्याग करनेमें ही है। इन्द्रियोंके विषयोंको भोगनेके लिये मनुष्य-जन्म नहीं है और यह कहना सर्वथा निराधार है कि 'बिना विचार किये ही भोगोंको भोग लेना चाहिये, नहीं तो फिर दूसरे जन्ममें आकर उन्हीं भोगोंको भोगना पड़ेगा।' क्योंकि शास्त्रोंमें कहीं भी विषय-भोगोंको मुक्तिका साधन नहीं बतलाया है, बल्कि जगह-जगह उनको कल्याणमें बाधक बतलाकर साधकके लिये बार-बार उनका त्याग करनेको कहा गया है। मुक्ति तो त्यागसे ही मिलती है, भोगोंसे नहीं; यह अटल सिद्धान्त है। न्यायोपार्जित भोगोंका भी जितना अधिक-से-अधिक त्याग कर दिया जाय, उतना ही महत्त्वकी बात है। संन्यास-आश्रममें तो त्यागकी ही प्रधानता है।

(२) यह कहना भी शास्त्रविरुद्ध है कि विरक्त संन्यासीको बहुमूल्य सुन्दर वस्त्र धारण करनेका, सोने-चाँदीके बरतनोंमें भोजन करनेका, गद्दोंपर सो-बैठकर आराम करनेका और बहुमूल्य सवारियोंमें बैठकर विचरनेका अधिकार है एवं संन्यासी स्त्रियोंको भी अपनी चेली बना सकता है। क्योंकि शास्त्रोंमें जगह-जगह इन सब बातोंका डंकेकी चोट

निषेध किया गया है। अत: जो पुरुष स्वार्थवश इन बातोंका प्रचार करता है, वह धर्मप्रेमी जनताको धोखा ही देता है।

अपनेको ईश्वरकोटिका संन्यासी बतलाना अहंकारकी बात है। ज्ञानीसे कभी दुराचार होता ही नहीं, उसके आचरण तो दूसरोंके लिये आदर्श हुआ करते हैं।

(३) संन्यासी दो ही प्रकारके नहीं, बहुत प्रकारके होते हैं; परन्तु किसी भी संन्यासीका महत्त्व ऐश-आराम भोगनेमें नहीं है। भौतिक प्रपंचमें फँसना तो सभी प्रकारके संन्यासियोंके लिये कलंक है। जिस संन्यासीमें जितना त्याग और वैराग्य अधिक है, वह उतना ही ऊँची कोटिका है। धन-ऐश्वर्यसे संन्यासीका बड़प्पन नहीं बल्कि पतन है।

(४) उनका यह कहना तो सर्वथा दु:साहस, दुराचार और शास्त्र-विरुद्ध है कि 'मैं ज्ञानी हूँ, मैंने परीक्षाके लिये कई बार पंद्रह-सोलह वर्षकी जवान लड़कियोंके साथ उपस्थ इन्द्रियका स्पर्श कराया; इसपर भी मेरे मनमें किसी तरहका विकार उत्पन्न नहीं हुआ—कामकी जागृति नहीं हुई। जिसका मन हो परीक्षा करके देख लें।'—इत्यादि, सच्चे ज्ञानी महापुरुष न तो इस तरहके वचन कहते हैं और न ऐसा अशास्त्रीय गंदा व्यवहार ही करते हैं। यह आचरण तो अत्यन्त दूषित, घृणित और महान् दुराचारत्वका द्योतक है।

(५) यह कहना सर्वथा सत्य है कि मनुष्य गुरुकी कृपासे भगवान्‌को पा सकता है और साधकका साधन गुरुकी सेवा करना ही है; क्योंकि सेवामें आज्ञापालनकी प्रधानता है और उसके बिना कोई भी साधक अपने लक्ष्यतक नहीं पहुँच सकता। परन्तु इसमें समझनेकी बात यह है कि जिन गुरुओंका उपर्युक्त महत्त्व है, वैसे गुरु बड़े दुर्लभ हैं। जो लोग गुरुका स्वाँग धारण करके गुरुडमका प्रचार करते फिरते हैं, उन लोगोंका यह महत्त्व नहीं है।

(६) यह कहना शास्त्रोंके और खास करके गीताके सर्वथा विरुद्ध है कि साकार-उपासनासे भगवान्‌की प्राप्ति होकर फिर जन्म होता है। इसके लिये आठवें अध्यायके श्लोक १४ से १६ देखने चाहिये।

(७) उनका यह कहना सर्वथा मिथ्या है कि गीताप्रेसकी गीताका अनुवाद उनका किया हुआ है। गीताप्रेससे न तो उनका कदापि कोई सम्बन्ध ही है और न गीताप्रेस उपर्युक्त सिद्धान्तोंसे किसी भी अंशमें सहमत है। गीताप्रेसके अनुवादमें तो उपर्युक्त दम्भाचरणका सर्वथा विरोध किया गया है।

उपाय पूछनेवालोंसे आप उपर्युक्त संन्यासीके सिद्धान्तोंका विरोध करते हैं, सो उचित ही है; ऐसा ही करना चाहिये। परन्तु विरोध करते समय इस बातका भी ध्यान रखना चाहिये कि अपने मनमें कहीं अभिमान या द्वेष अपना स्थान न बना ले और दूसरोंके दिलपर किसी तरहकी चोट न पहुँचे।

आपने लिखा कि बहुत-से गीताका अभ्यास करनेवाले भाई भी इन सिद्धान्तोंपर चलते हैं; सो यह बड़े आश्चर्यकी बात है। यदि थोड़ा-सा भी गीताके सिद्धान्तके साथ इन सिद्धान्तोंका मिलान किया जाय तो ये कपोलकल्पित सिद्धान्त तनिक भी टिक नहीं सकते। उन भाइयोंके माता-पिता अपने लड़कोंकी शिकायत करते हैं, सो तो ठीक ही है। दुराचारकी शिकायत तो होनी ही चाहिये।

संन्यासीजीने अपने सिद्धान्तके विरोधियोंको बहुत कुछ भला-बुरा कहा, यह उनकी इच्छा है; पर क्या किया जाय। स्वार्थवश प्रायः बहुत लोग ऐसी बातें किया करते हैं। आपने दुःख नहीं माना, सो बहुत ही अच्छा किया। जिन भाइयोंको उनकी बातोंसे दुःख हुआ, उनको भी यही समझना चाहिये कि दुःख करनेसे कोई लाभ नहीं है। असली बात समझकर जो उचित हो, शान्तिके साथ वही करना चाहिये।

गीता-धर्ममण्डलमें परस्पर प्रेमभाव बढ़े, विरोध न हो—इसके लिये चेष्टा करनी चाहिये। दो पार्टियाँ न होना अच्छा है। आपसे जहाँतक हो सके, मतभेद मिटाकर समझानेकी चेष्टा करनी चाहिये।

आपने पूछा कि 'क्या विरोध न करके दोनों स्थानोंमें सत्संग कर लिया करूँ?' इसके उत्तरमें यह लिखना है कि जिस जगह सदाचार और सत्-सिद्धान्तके अनुकूल विचार होता हो, उसीका नाम सत्संग है। अतः

जहाँ ऐसी व्यवस्था हो, वहाँ तो जाना ही चाहिये। रही वहाँ जानेकी बात; जहाँ दोनों तरहकी बातें होती हैं; इसके विषयमें यह कहना है कि यदि वहाँ ऐसी बातोंका विरोध करके लोगोंको समझानेसे सच्ची बात उनकी समझमें आनेकी उम्मीद हो और आप शान्तिपूर्वक बिना द्वेषभावके उन्हें समझानेका परिश्रम कर सकें तो वहाँ जाना भी बहुत अच्छा है। परन्तु यदि यह बात न हो और अपने साधनमें विघ्न आता हो तो वहाँ जानेमें कोई लाभ नहीं है।

सबका यथायोग्य हरिस्मरण समझना चाहिये।

---

[५८]

महोदय! प्रेमपूर्वक हरिस्मरण! आपका पत्र यथासमय मिला। समाचार ज्ञात हुए। आपके प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है—

(१) मनुष्यके द्वारा जो पाप-पुण्य किये जाते हैं, वे उसके स्वभावकी प्रेरणासे यानी प्रकृतिके अनुसार होते हैं। जिसकी प्रकृति शुद्ध-सात्त्विक है, उसके द्वारा अच्छे कर्म होते हैं और जिसकी प्रकृतिमें रजोगुण-तमोगुण अधिक हैं, उसके द्वारा पाप-कर्म अधिक होते हैं। चेष्टा करनेसे मनुष्य अपनी प्रकृतिका सुधार कर सकता है। भगवान्‌के नाम-जपसे, सदाचारी संत पुरुषोंके संगसे, श्रेष्ठ पुरुषोंके वचनोंका श्रवण और अध्ययन करके उनके अनुसार साधन करनेसे तथा भगवान्‌की कृपासे प्रकृतिका सुधार शीघ्र हो सकता है। पाप-कर्म भगवान् कराते हैं, यह मानना सर्वथा भूल है। भगवान् तो हर प्रकारसे हमलोगोंको पापोंसे बचानेमें सहायक हैं। पाप करते समय भी हमें चेतावनी मिलती रहती है। पापका फल दुःख भुगताकर भी भगवान् चेतावनी देते हैं। इतनेपर भी मनुष्य अपनी आदत और आसक्तिके वशीभूत होकर पापमें प्रवृत्त रहता है। इसमें भगवान्‌का क्या दोष है?

सब कुछ भगवान्‌की दयासे होता है। भगवान्‌की कृपाके बिना कुछ भी नहीं हो सकता। भगवान् नट हैं, हमलोग अपना-अपना अभिनय दिखानेके लिये यहाँ आये हैं। यह मानकर भगवान्‌के आज्ञानुसार अपने-

अपने स्वाँगका पूर्णरूपसे खेल दिखाना और उसमें आसक्त होकर सुखी-दु:खी न होना—ऐसा करना तो बहुत ही उत्तम है। इसमें पापकर्मकी बात कहाँ है? ऐसा माननेवाला तो भगवान्‌की आज्ञाका ही पालन करेगा। वह भगवान्‌से विरुद्ध निषिद्धाचरण कैसे कर सकता है? ऐसे भक्त क्या करते हैं, उनका कैसा भाव होता है? इसे देखना हो तो गीतातत्त्वांक अध्याय १२ श्लोक १३ से २० तक देखिये।

अजामिल पहले भगवान्‌का भक्त था, फिर कुसंगसे पापमें प्रवृत्त हो गया। अन्त समयमें अपने पुत्रका नाम नारायण उच्चारण करते-करते उसका लक्ष्य भगवान्‌की तरफ चला गया। इसी कारण भगवान्‌ने उसको यमदूतोंसे बचाया और पुन: उसे अपनी भक्तिमें लगाकर उसका उद्धार किया। अन्तकालके स्मरणका विशेष महत्त्व है (गीता अध्याय ८ श्लोक ५ देखना चाहिये)। भगवान्‌की कृपासे बिगड़ी बन जाती है, यह सर्वथा सत्य है और तुलसीदासजीका भी यह कहना बिलकुल यथार्थ है कि ***'जापर कृपा राम की होई। तापर कृपा करइ सब कोई॥'*** परन्तु भगवान्‌की दयाका प्रकाश भगवान्‌पर भरोसा करके उनकी शरण जानेपर ही होता है, अन्यथा उसका अनुभव नहीं होता।

(२) मुझे भगवान्‌का साक्षात्कार हुआ है या नहीं—यह व्यक्तिगत बात है। इस प्रश्नका उत्तर देनेमें मैं लाचार हूँ।

(३) भजन-कीर्तनमें मन लगनेका उपाय पूछा, सो जिन सज्जनोंका भजन-कीर्तनमें मन लगता है, जो भगवान्‌के प्रेमी भक्त हैं, उनका संग करनेसे, उनके द्वारा भगवान्‌के गुण और प्रभावकी बात सुननेसे एवं पहले-पहल मन न लगनेपर भी भजन-कीर्तनका अभ्यास करते रहनेसे तथा बार-बार भगवान्‌से इसके लिये प्रार्थना करनेसे संसारमें वैराग्य और भगवान्‌में प्रेम होकर भजन-कीर्तनमें मन लग सकता है।

आपका मन जो यह चाहता है कि हर समय भगवान्‌का भजन मन-ही-मन होता रहे, यह बहुत ही अच्छी चाह है। यह इच्छा जितनी प्रबल हो उतनी ही अच्छी है। इसकी वृद्धि होनेसे सहज ही मन भगवान्‌के भजनमें लग सकता है। इसी तरह भगवान्‌का ध्यान भी अपने-आप हो

सकता है। बस, इस चाहको ही बढ़ानेकी जरूरत है, फिर तो सब काम अपने-आप बन जायगा। इसमें निराश होनेकी कोई बात नहीं है।

आपकी उम्र चौदह सालकी है। आप एकान्तमें रहकर भजन करना चाहते हैं, सो यह मन बड़ा पाजी है, हर तरहसे धोखा दिया करता है; अतः अभी ऐसा न करके घरमें रहते हुए और घरका काम-काज भी यथाधिकार करते हुए आपको भजनका अभ्यास बढ़ाना चाहिये। साथ ही भगवान्‌के भजन-ध्यानकी इच्छाको उत्कट बनाना चाहिये। संसारसे प्रेम हटाकर भगवान्‌में प्रेम जोड़ना चाहिये। रात्रिमें डर लगता है, यह आपकी गलती है—भगवान् सब जगह मौजूद हैं, फिर डर किस बातका?

आपने लिखा कि भगवान्‌की गोदमें बैठना असम्भव है, सो असम्भव नहीं है। भगवान् तो अपने भक्तको गोदमें बैठानेके लिये हर वक्त तैयार हैं।

आपने लिखा कि कलहका बाजार बहुत गरम है, इससे हृदय बिंधता रहता है। सो भगवान्‌में प्रेम होनेपर कलहकी ज्वाला अपने-आप शान्त हो सकती है।

आपने लिखा कि दुनियामें पापी-ही-पापी भरे पड़े हैं, सो ऐसा खयाल नहीं रखना चाहिये। दूसरोंके अवगुण न देखकर अपने ही अवगुणोंकी ओर देखना चाहिये और उनका सुधार करना चाहिये! दूसरोंके गुणोंकी खोज करनी चाहिये। यही सुधारका रास्ता है। मेरी और भाई हनुमानप्रसाद पोद्दारकी बड़ाई लिखी, सो ऐसा नहीं लिखना चाहिये। इस समय भी संसारमें विश्वासपूर्वक खोज करनेपर बहुत महात्मा और धर्मात्मा मिल सकते हैं। हमलोग तो साधारण मनुष्य हैं।

किसी मनुष्यने जो भगवान्‌के विषयमें आपको निराशाकी बात कही, सो उनकी गलती है। सम्भव है; वे इस विषयमें अनभिज्ञ हों। किसी जाति-विशेषकी भाँति भगवान् धोखेबाज नहीं हैं। वे तो सर्वथा हमारे हितैषी हैं। ऐसे बेसमझ मनुष्यकी बात सुनकर आपको चिन्ता क्यों होनी चाहिये?

आपको ईश्वरका जो कुछ भरोसा है, उसे और भी बढ़ाना चाहिये। इस मार्गमें विश्वास ही सबसे बढ़कर सहायक है। पीलीभीतमें श्रीहरिसंकीर्तनका उत्सव मनाया गया, सो बहुत ही अच्छा हुआ। अवसर न मिलनेके कारण मैं नहीं जा सका। वहाँकी जनता मुझे चाहती है, यह उन लोगोंके प्रेमकी बात है। मैं इसके लिये उनका आभारी हूँ।

(४) अच्छे और बुरे कर्मोंका फल इस लोकमें सुख और दुःखके भोगरूपमें मिलता है। इसके सिवा, लोकान्तरमें भी स्वर्ग और नरककी प्राप्ति होती है। दोनों तरहसे ही कर्मोंका भोग होता है।

(५) आत्मा नित्य है, शरीर नाशवान् है। शरीरका नाश होनेपर आत्माका नाश नहीं होता। शरीरका परिवर्तन हो जाता है।

जन्म-जन्मान्तरोंमें किये हुए कर्मोंका फल भोगनेके लिये जीवको नाना प्रकारकी योनियोंमें जन्म लेना पड़ता है। जबतक भगवान्से मिलना नहीं होता, तबतक इसका इस आवागमनके चक्रसे पिण्ड नहीं छूटता।

आपको जो ***'हे नाथ नारायण वासुदेव, श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे।'*** यह पद अच्छा लगता है और इसीका जप करनेकी आप चेष्टा करते हैं, सो बड़ी अच्छी बात है। इसी अभ्यासको खूब बढ़ाना चाहिये।

..........से आपकी बातचीत हुई और उन्होंने जो आपसे कहा—वह बहुत ठीक है। भगवान् तो त्रिकालसत्य हैं।

[५९]

महोदय! प्रेमपूर्वक हरिस्मरण। आपका पत्र मिला, समाचार मालूम हुए। किसीको आशीर्वाद देनेकी न तो मुझमें शक्ति या सामर्थ्य है और न अधिकार ही है। मनके संशय, भ्रम और कुवासना तो भगवान्का भजन, ध्यान और सत्संग करनेपर भगवान्की दयासे ही नष्ट हो सकते हैं। मैं तो एक साधारण मनुष्य हूँ। मुझसे प्रार्थना करनेसे ऐसी माँग पूरी नहीं हो सकती। इसके लिये तो भगवान्से ही प्रार्थना करते रहना चाहिये।

आपने लिखा कि ब्रह्मज्ञानी और ईश्वरमें कोई भेद नहीं है, सो जो कोई ब्रह्मज्ञानी हैं, उनको मेरा बार-बार नमस्कार है। ईश्वरकी बराबरी

दूसरा कोई भी नहीं कर सकता। ईश्वर तो ईश्वर ही हैं? वे सर्वसमर्थ हैं। रामायणमें जो संतोंकी महिमाका वर्णन है और उनको रामसे भी अधिक बताया गया है उसका अभिप्राय दूसरा है। उनका वह महत्त्व रामके ही महत्त्वको बढ़ानेके लिये है। वैसे संतोंके दर्शन दुर्लभ हैं।

आपके प्रश्नोंका उत्तर अपनी समझ और शास्त्रके आधारपर लिखा जाता है। अगर इससे आपके मनमें सन्तोष हो सके तो बड़ी अच्छी बात है।

(१) गुरु गोविन्दसिंहजीने जो यह कहा कि 'मुझे जो ईश्वर कहेगा, वह नरकमें पड़ेगा, यह बहुत ही उचित कहा है। महापुरुषोंको ऐसा ही कहना चाहिये। जो साधु अथवा भगवान्‌के भक्त कहलानेवाले लोग भगवान्‌की जगह अपने शरीरकी पूजा कराते हैं, वे वास्तवमें साधु, महात्मा या भक्त नहीं हैं। वे तो प्रत्यक्ष ही दम्भी और लोगोंको धोखा देनेवाले हैं। शास्त्रोंमें जो सर्वत्र ब्रह्मबुद्धि करनेके लिये कहा गया है, वह बात दूसरी है। उसका यह अभिप्राय नहीं है कि माता-पिता, भाई-बहन और स्त्रीके साथ यथायोग्य व्यवहार भी मत करो। वेदान्त-शास्त्रका तो यह अभिप्राय है कि दृश्य जगत्‌को अध्यारोपित समझकर उससे आसक्ति हटाओ और एक ब्रह्मको ही सबका अधिष्ठान समझकर उसीका श्रवण, मनन और निदिध्यासन करो। इसमें किसी व्यक्ति-विशेषको ईश्वरसे बढ़कर माननेकी बात नहीं है। गुरुको ईश्वरके समान माननेके लिये कहनेका खास अभिप्राय यही है कि उसके उपदेशको शिष्य श्रद्धापूर्वक काममें लावें। सच्चे संत न तो किसीसे पूजा कराते हैं और न ईश्वरकी बराबरी ही करते हैं। वे तो अपनेको सदा सबका सेवक ही समझते हैं। ईश्वरकी जगह अपने शरीरको पुजवाना तो स्वार्थी आदमियोंका काम है।

(२) आपने जिस दोहेका अर्थ पूछा और शंका की, वह किसी प्रामाणिक ग्रन्थका वचन तो है नहीं, साधारण वाणी है। लिखनेका भाव यह मालूम होता है कि 'गुरु-मन्त्रका त्याग करनेवाला दरिद्री हो जाता है। गुरुकी अवज्ञा करना उसे मारनेके समान पाप है। गुरु-मन्त्रका त्याग करनेवाला सिद्ध भी नरकमें जाता है।' यहाँ यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि जो भगवत्-प्राप्त सिद्ध महापुरुष होते हैं, वे स्वप्नमें

भी नरकगामी नहीं हो सकते। साथ ही यह भी समझ लेना चाहिये कि वे गुरु-मन्त्रका त्याग करें—ऐसी सम्भावना भी नहीं है; क्योंकि उनमें इसका कोई हेतु ही नहीं रहता। अतः यह कहना इस तरहके सिद्धोंके विषयमें समझना चाहिये, जो मामूली सांसारिक सिद्धियोंकी चमक-दमक दिखाकर अपने-आपको सिद्ध महात्मा प्रसिद्ध करके लोगोंको ठगते फिरते हैं। ऐसे पाखण्डी मनुष्य ही गुरुकी अवज्ञा करके गुरुसे अधिक अपनी पूजा करवानेके लिये अनेक प्रकारकी चेष्टा किया करते हैं। उनके लिये यह कहना उचित ही है; क्योंकि ऐसे पाखण्डियोंके लिये ही तो नरक बनाये गये हैं। सदाचारी मुमुक्षु कभी नरकमें नहीं जाता और वह भूलकर भी सच्चे गुरुका अपमान या अवज्ञा नहीं करता। हाँ, किसी पाखण्डीको पहले भूलसे गुरु मान लिया हो और पीछे पता चल गया हो, तो ऐसी हालतमें ऐसे दम्भी गुरुका तो त्याग करना उचित ही है। यह बात स्वयं श्रीहनुमान्‌जीने कपटसे साधु और गुरु बननेवाले कालनेमिको मारकर चरितार्थ कर दिखायी है।

(३) जिस प्रकार सगुण भगवान्‌की मूर्तिका भजन, ध्यान करनेका विधान है, उस प्रकार सुषुप्तिका ध्यान करना विधेय नहीं है। सुषुप्ति-अवस्था तो महान् तमोगुणी और अज्ञानावस्था है। उसका क्या ध्यान किया जाय? उस प्रकारकी वृत्ति बनानेसे तो मनुष्यका उलटा अधःपतन होगा और गीतामें कहा है कि **'अधो गच्छन्ति तामसाः'** (१४। १८)।

(४) परब्रह्म निर्गुण निराकार परमात्मा ही जड जगत्‌के रूपमें प्रतीत होता है—यह बात तो ज्ञानसे समझकर जडका बाध करके सर्वत्र परमात्म-बुद्धि करनेके लिये कही गयी है, सांसारिक व्यवहारके लिये नहीं। शास्त्रका उद्देश्य चेतनको जड बनाना नहीं है, जडको ही वास्तवमें चेतन समझनेके लिये कहना है।

(५) आपका यह प्रश्न ठीक समझमें नहीं आता। सुषुप्ति-अवस्था तो कोई ध्यान करनेयोग्य वस्तु ही नहीं है। भगवान्‌की मूर्तिका ध्यान किया जा सकता है।

(६) किसी मनुष्यको प्रचलित प्रणालीके अनुसार गुरु बनाना सद्‌गति या ब्रह्म-प्राप्तिके लिये अनिवार्य नहीं है। आजकलके जमानेमें सच्चे गुरुओंका अभाव-सा ही हो गया है। अधिकांशमें गुरुडम बढ़ानेवाले पाखण्डियोंकी ही भरमार है। ब्रह्मज्ञानका सम्बन्ध तो अन्त:करणकी शुद्धिसे है। सबके गुरु तो परमपिता परमात्मा स्वभावसे ही हैं। उनका कभी अभाव होता नहीं। उनकी वाणी भी गीताजीमें और दूसरे-दूसरे शास्त्रोंमें भरी हुई है। उसपर परमश्रद्धा करके उसके अनुसार साधन करनेपर अपने-आप ही ब्रह्मज्ञान हो सकता है। यह बात जरूर है कि यदि सौभाग्यसे कोई सच्चे महात्मा सिद्ध पुरुष या ऊँचे दर्जेका साधक गुरुरूपसे प्राप्त हो जायँ तो साधनमें बहुत ही सुगमता हो जाती है और मनुष्य शीघ्र ही परमात्माको प्राप्त कर सकता है। सद्‌गुरुकी सहायताके बिना कुछ समय अधिक लग सकता है।

(७) आपने जो ब्रह्म-प्राप्तिके तीन उपाय लिखे, उनमेंसे किसी एकके द्वारा या तीनोंके द्वारा भी ब्रह्मज्ञान नहीं हो सकता, ब्रह्मज्ञान न तो केवल उपनिषद्, गीता, विष्णुसहस्रनामादि शास्त्रोंको पढ़नेमात्रसे होता है, न किसीको गुरु मानने या स्वीकार करनेसे होता है और न किसीके अनुमोदन करनेसे या केवल महावाक्य सुनानेसे ही होता है। वह तो गीता, उपनिषद् और संत महापुरुषोंके उपदेशपर श्रद्धा करके उसके अनुसार आचरण और साधन करनेसे अन्त:करण शुद्ध होनेपर ही होता है। अत: मनुष्यको उचित है कि वह भजन, ध्यान, सेवा और सत्संगमें अधिक-से-अधिक मन लगावे और परमात्माके चिन्तनको कभी न छोड़े।

(८) अपने-आपको गुरु न माननेवाले और गुरु बननेके योग्य न बतानेवाले संतको कोई साधक अपने मनमें गुरु मानकर उनके उपदेशोंसे आध्यात्मिक लाभ उठाना चाहे तो बड़ी खुशीसे उठा सकता है। इसमें कोई आपत्ति नहीं है, यह साधककी श्रद्धाका विषय है। उसकी सच्ची श्रद्धा होगी और वह उस संतके कहनेके अनुसार तत्परतासे साधनमें लगा रहेगा तो बहुत लाभ उठा सकता है। यह रास्ता गलत नहीं है।

[६०]

महोदय! हरिस्मरण। आपका पत्र यथासमय मिला, समाचार मालूम हुए। इस समय यहाँ स्वर्गाश्रममें सत्संग चलता है। आपके प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है—

श्रीशालग्रामजीका पूजन एक साथ बहुत-सी मूर्तियाँ रखकर किया जा सकता है। इसका विधान पद्मपुराणके पातालखण्डमें आया है। यह पूजन करनेवालेकी रुचिपर निर्भर है कि वह अपनी पूजामें कितनी ही मूर्तियाँ रखे।

शालग्रामजीमें कोई विष्णु, कोई राम, कोई नृसिंह, कोई कृष्ण और कोई गिरधर-गोपालकी भावना रखकर पूजा करते हैं, सो सभी उचित है; क्योंकि एक ही परमेश्वरके अनेक रूप हैं; अत: भक्त अपने किसी भी इष्टकी भावना शालग्रामशिलामें कर सकता है। ऐसा करना अनुचित नहीं है।

इसी तरह मन्दिरोंमें भी जिस देवताका वह खास मन्दिर हो, उसके सिवा श्रीशालग्रामजीकी भी पूजा की जाय तो कोई अनुचित नहीं है। इसपर जो आपत्ति करते हैं उनकी भूल है।

शालग्रामशिलामें भगवान्‌की उपासना कबसे आरम्भ हुई—इसका कुछ पता नहीं है। इसे तो सदासे ही समझना चाहिये। तुलसी भगवान्‌की प्रिय वस्तु है, यह शास्त्रोक्त बात है। पुराणोंमें इसकी कथा दूसरे तरहसे पायी जाती है, परन्तु उसका रहस्य समझमें नहीं आता। अत: यही मानना उचित मालूम होता है कि यह भगवान्‌की प्रिय वस्तुओंमेंसे एक है; क्योंकि इसमें अधिक-से-अधिक सात्त्विक गुण भरे हुए हैं।

अन्य उपासक भी यदि शालग्राममें अपने इष्टदेवकी भावना करके उनका चरणोदक लें, तो मेरी समझमें कोई अनुचित बात नहीं है। विष्णुमें और परब्रह्म परमात्मामें कोई भेद नहीं है, साम्प्रदायिक कल्पनामें मेरा अनुराग नहीं है। वेद, स्मृति, इतिहास और पुराणोंमें एक ही ईश्वरका अनेक रूपमें प्रकट होना बताया गया है। अत: श्रीराम,

श्रीकृष्ण और श्रीविष्णु—इनमें किसी प्रकारके भेदकी कल्पना उचित नहीं मालूम होती।

वास्तवमें भगवान् भोगके भूखे नहीं हैं। वे तो भावना और प्रेमके भूखे हैं। उनका प्रेमी भक्त प्रेमपूर्वक जो कुछ भी पत्र-पुष्प-फल या जल उनको समर्पण करता है, उसे वे बड़े आदरसे आरोगते हैं। अत: यह कहना नहीं बनता कि बिना तुलसीदलके भगवान् भोग नहीं आरोगते। यह तो अपनी-अपनी श्रद्धाकी बात है। भगवान्‌ने तो विदुरके घर केलोंके छिलकोंका भोग भी बड़ी प्रसन्नताके साथ लगाया। फिर दूसरे भोगकी बात कौन कहे? यही तो भगवान्‌की विशेषता है। इस विषयपर गीतातत्त्वांकमें नवें अध्यायके २६वें श्लोककी टीका देखनी चाहिये। तुलसीदल भगवान्‌के चरणोंमें भी चढ़ाये जा सकते हैं और भोगमें भी सम्मिलित किये जा सकते हैं। हाँ, यह बात अवश्य है कि जिन पत्तोंको चरणोंपर चढ़ा दिया जाय, उनको नैवेद्यमें नहीं देना चाहिये तथा एक बार चढ़ाये हुए पत्तोंको दुबारा नहीं चढ़ाना चाहिये।

माला और तिलकोंकी सभी बातें साम्प्रदायिक हैं। अत: इनके लिये इतना ही लिख देना यथेष्ट है कि जिसको जिस सम्प्रदायकी मान्यता हो, उसको उसीके नियमोंके अनुसार माला-तिलक आदि धारण करने चाहिये। सभी सम्प्रदाय अच्छे हैं। जो इन साम्प्रदायिक बातोंमें पड़ना न चाहे, वह स्वतन्त्र है।

भगवान् किसी एक सम्प्रदायके ठेकेमें बँधे नहीं हैं। उनकी दया सबपर समान है। जो कोई भी उनको प्रेमपूर्वक भजता है, वही उनको पा लेता है; फिर वह चाहे किसी भी वर्ण और आश्रममें रहनेवाला या किसी भी सम्प्रदायको माननेवाला और न माननेवाला क्यों न हो; तथा स्त्री, पुरुष, बालक या बूढ़ा किसी भी अवस्थामें क्यों न हो। भगवान् तो उसके हृदयका विश्वास और प्रेम देखते हैं। उनको तो भावकी आवश्यकता है। उनके सामने ऊपरके बाहरी चिह्नोंकी कोई विशेष कीमत नहीं है।

विष्णु, महाविष्णु और राधावल्लभ भगवान् श्रीकृष्ण—इनमें वस्तुत: कोई अन्तर नहीं है। किसीकी भी उपासना उस एक ही ब्रह्मकी उपासना है और सबका एक ही फल है, इसमें भेद मानकर झगड़ा बढ़ाना गलती है।

आपने लिखा कि नाराज न होना, उत्तर अवश्य देना—सो इसमें नाराज होनेकी तो कोई बात ही नहीं है। आपने तो बहुत ही अच्छी बातें पूछी हैं।

तुलसी, शालग्राम और माला-तिलकका विषय 'कल्याण' में समालोचनाके तौरपर लिखना ठीक मालूम नहीं होता; क्योंकि किसी भी सम्प्रदायका खण्डन-मण्डन करके किसीके दिलको चोट पहुँचाना 'कल्याण' का उद्देश्य नहीं है। 'कल्याण' तो सभी साधकोंको यथासाध्य सहायता करना ही अपना काम समझता है।

अनन्य उपासनावालोंको सन्ध्यादि नित्यकर्म भगवान्‌के आज्ञापालनके रूपमें अवश्य करने चाहिये।

[६१]

महोदय! प्रेमपूर्वक हरिस्मरण। आपका पत्र गीताप्रेस, गोरखपुरके मारफत यथासमय मिला। समाचार विदित हुए। आपके प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है—

१. (क) संक्षिप्त हिंदी वाल्मीकीय रामायणका नवाह्निक पाठ अनुष्ठानके रूपमें करना मेरी समझमें विधिसंगत नहीं है। किसी खास कार्यके लिये नियमित पाठका अनुष्ठान तो मूल संस्कृत रामायणका ही होना चाहिये। वही शास्त्रानुकूल है।

(ख) जिनको संस्कृत ठीक तरहसे समझमें आती है, उनको जितना लाभ संस्कृत रामायणसे होता है, उतना लाभ तो इसके श्रवण-पठनसे नहीं होगा। परन्तु जो लोग संस्कृत नहीं समझते, भगवान्‌के चरित्रोंमें जिनका प्रेम है और जो यह जानना चाहते हैं कि श्रीवाल्मीकिजीने भगवान्‌के चरित्रोंका वर्णन किस प्रकार किया है, उनके लिये यह ग्रन्थ

अवश्य ही बहुत ही लाभप्रद है। इसका पाठ करना और सुनना-सुनाना तो किसी अंशमें संस्कृतका भाव नहीं समझनेवालोंके लिये मूल ग्रन्थकी अपेक्षा भी अधिक लाभप्रद सिद्ध हो सकता है; क्योंकि पूरी रामायणका विस्तार बहुत है। काव्य-ग्रन्थ होनेके कारण उसमें प्रकृतिकी शोभा और युद्धका वर्णन भी विस्तारसे आ जाता है। इसमें जो विषय विशेष उपयोगी नहीं समझे गये, वे छोड़ दिये गये हैं। अतः इसके पठन और श्रवणसे थोड़े समयमें ही भगवान्‌की मुख्य-मुख्य लीलाओंका ज्ञान सहजमें ही हो जाता है—यह इसकी विशेषता है।

(ग) इस प्रश्नका उत्तर कुछ तो ऊपरके उत्तरमें आ ही जाता है। रही यह बात कि यह किस बातमें कम है, सो सकाम अनुष्ठानकी जो विधि सांसारिक फलोंके लिये शास्त्रोंमें बतायी गयी है, उसमें इसका दर्जा कम हो सकता है।

(२) वाल्मीकीय रामायणके पाठ-श्रवणका सर्वोत्तम महीना पूछा, सो मेरी रायमें तो जिस भाईकी जिस महीनेमें इसका पठन, श्रवण करनेकी लालसा हो, उसके लिये वही सर्वोत्तम है; क्योंकि भगवान्‌के चरित्र सुनने और पढ़नेका मौका भगवान्‌की ही दयासे मिलता है।

(३) पाठकर्ता पण्डित यदि निष्कामभावसे, भगवत्प्रेमसे ही कथा सुनानेवाला हो, तब तो गरीब श्रद्धालु श्रोताको द्रव्य देनेकी कोई जरूरत नहीं है; क्योंकि भगवान्‌की कथाका बदला धनसे थोड़े ही चुकाया जा सकता है। यदि पाठ करनेवालेकी यही जीविका हो और उसकी कुछ सेवा करनी हो तो अपनी शक्तिके अनुसार जो कुछ पत्र-पुष्प दे सके, दे देना ही यथेष्ट है। अधिक भार तो धनिकोंपर ही रहना चाहिये।

४. (क) ग्रन्थको ऊँचे आसनपर रखकर पढ़ना ग्रन्थका सम्मान है। इससे ग्रन्थपर प्रेम और श्रद्धा बढ़ती है। अतः इसे अनिवार्य समझना ही अच्छा है।

(ख) इसका उत्तर ऊपर आ गया है।

(ग) हाथमें पुस्तक रखकर पाठ करना निष्फल तो नहीं हो सकता;

परन्तु किसी आसनपर रखकर भक्ति-भावसे पाठ करना अधिक लाभप्रद अवश्य है।

(घ) इसका उत्तर (ग)-में आ गया, अतः यह प्रश्न नहीं बनता।

(५) किसी अनुष्ठानमें सामूहिक रूपसे स्त्री और पुरुषोंका एक साथ सम्मिलित होकर बैठना और पाठ करना—मेरी समझमें ठीक नहीं है। स्त्रियोंको स्त्रियोंके समुदायमें और पुरुषोंको पुरुषोंके समुदायमें बैठना अच्छा है।

(६) पाठके निश्चित दिनोंके बीचमें यदि किसी कारणवश स्थान, समय अथवा दोनोंका परिवर्तन करना ही पड़े तो किया जा सकता है। ऐसा करनेसे मनमें थोड़ा विक्षेप होता है। क्षति या दोष—जो कुछ समझिये, आता है। अतः यदि परिवर्तन न करनेसे ही काम चल सके, तो परिवर्तन न करना ही अच्छा है और कोई बात नहीं, प्रधानता तो श्रद्धा-प्रेमकी है; समय और स्थानकी नहीं। यदि स्थान और समयका परिवर्तन करनेसे श्रोता और वक्ताको अधिक शान्ति मिलती हो, तो ऐसा परिवर्तन कहीं लाभप्रद भी हो जाता है।

(७) जिनका यज्ञोपवीत-संस्कार हो गया है, उनको कम-से-कम दोनों समय सन्ध्योपासन और एक माला गायत्रीजप प्रतिदिन अवश्य करना चाहिये। शेष समय यदि किसीका प्रेम हो तो रामचरितमानसके पाठमें ही लगा सकता है। यह धर्मानुकूल ही है। भगवान्‌की लीलाओंका अध्ययन करनेसे बढ़कर धर्म क्या हो सकता है।

(८) मन्दिरमें खिड़की रखनेकी मनाही है या नहीं; यदि है तो क्यों? इस बातका मुझे पता नहीं है; मेरी रायमें तो खिड़की रखनेमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये।

(९) गायत्रीमन्त्रका जप व्यक्तिगत होते हुए भी उसमें जो बहुवचनकी क्रियाका प्रयोग किया गया है, वह इस उद्देश्यसे किया गया है कि दूसरे सब भाइयोंकी भी प्रार्थना सम्मिलित समझी जाय। अतः कोई हानिकी बात नहीं है, अनुचित नहीं है।

(१०) श्रीहनुमान्‌जीके विषयमें वैज्ञानिक सिद्धान्तसे जो आपने तर्क

पेश किया है, उसका ठीक-ठीक उत्तर समझमें नहीं आया। इसका कोई दूसरा ही अर्थ हो सकता है। सम्भव है, वह रूप हमारी समझमें न आया हो। सूर्यलोकको कोई निगल सके—यह तो सम्भव नहीं।

(११) पाण्डवोंने वेष और नाम बदलकर विराटनगरमें निवास किया, इसमें न तो अधर्म था, न मिथ्या वचन ही थे; क्योंकि बारह महीनोंतक अज्ञातवास करनेकी उनकी प्रतिज्ञा थी। उसका पालन करनेके लिये उनके पुरोहितने उनको दूसरे नाम रखनेकी आज्ञा दी थी। अतः उनका इस प्रकार निवास धर्मयुक्त ही था। यदि वे किसीका बुरा करनेके लिये ऐसा करते तो धर्म नहीं माना जा सकता था। उनका उद्देश्य विशुद्ध था। धर्मका निर्णय क्रियाकी अपेक्षा भावपर ही अधिक निर्भर है। इसके प्रमाणस्वरूप आप देखिये—अश्वत्थामाके मारे जानेका समाचार युधिष्ठिरने द्रोणाचार्यको प्रकारान्तरसे ही दिया; परन्तु वह युधिष्ठिरके लिये अधर्म माना गया, पर विराटनगरमें छिपकर रहना या नाम बदलना अधर्म नहीं समझा गया।

[६२]

बहिन ····· देवीजी ! सादर हरिस्मरण ! आपका पत्र यथासमय मिल गया था; परन्तु समय न मिलनेके कारण उत्तर देनेमें विलम्ब हुआ। इसके लिये किसी प्रकारका खेद नहीं करना चाहिये।

× × × ×

आपने पूछा कि गीता अठारह अध्यायका पाठ अगर पंद्रह दिनोंमें पूरा किया जाय तो माहात्म्यका पाठ प्रतिदिन करना चाहिये या आरम्भमें अथवा अन्तमें? उसका उत्तर यह है कि माहात्म्यका पाठ प्रतिदिन करनेकी जरूरत नहीं है। पंद्रह दिनमें जब गीताका पाठ पूरा हो, तब किया जा सकता है। यदि भोजनसे पहले समय न मिलता हो, तो भोजनके बाद भी किसी निश्चित समयपर गीता-पाठ करनेका नियम बनाया जा सकता है।

आपने पूछा कि ऊपरकी सात बातें कौन-सी हैं, मुझे उनकी खबर

नहीं है, उनका पालन कैसे करना चाहिये? इसका उत्तर है कि वे तो उसी पत्रमें ऊपर लिखी होंगी। उसीमें खोजनी चाहिये। सम्भवतः ये ही सात बातें होंगी।

१. भगवान्‌के नामको याद रखना, २. उनका ध्यान करना, ३. सत्संग करना, ४. सबकी यथायोग्य सेवा करना, ५. सत्यभाषण, ६. ब्रह्मचर्यका पालन और ७. सदाचार। ये ही सात बातें हो सकती हैं।

आपने पत्रका उत्तर देनेमें देर होनेका कारण लिखा, सो मालूम हुआ। आप गोकुल, मथुरा, वृन्दावन, गिरिराज, नाथद्वारा आदि तीर्थ-स्थानमें भ्रमण करके आयीं, सो आनन्दकी बात है।

मेरे विषयमें किसी भाईने आपसे जो बातें कहीं, सो तो उनका विश्वास है। मैं तो एक साधारण मनुष्य हूँ। हाँ, यह बात अवश्य है कि यहाँ सत्संगके लिये बहुत-से भाई और बहिनें इस समय इकट्ठे होते हैं। समय भगवान्‌के भजन-स्मरणमें ही अधिक व्यतीत होता है। इस कारण वातावरण बहुत ही अच्छा रहता है। इस प्रकारके सत्संगका अवसर भगवान्‌की दयासे ही मिलता है।

आपके पति रोज एक माला '**ॐ नमः शिवाय**' इस मन्त्रको जपते हैं, सो बहुत अच्छी बात है। भगवान्‌के अनेक नाम हैं, उनमें जिसको जो रुचिकर हो, उसके लिये वही हितकर है। आपने लिखा कि मुझे ध्यानमें बैठना सिखाया जाता है, परन्तु बहुत समय ध्यानमें बैठना रुचिकर नहीं होता। शरीर दुखने लग जाता है। सारा दिन चलते-फिरते, उठते-बैठते और काम करते-करते नाम-जप करना रुचता है, सो यह बहुत अच्छी बात है। प्रेमपूर्वक ऐसा करते-करते भगवान्‌का ध्यान भी इसी तरह हर वक्त अपने-आप होने लग जाता है। उसके लिये कोई अलग साधन नहीं करना पड़ता। निरन्तर नाम-जपमें बड़ी भारी शक्ति है।

आपने लिखा कि एक जगह बैठकर विधिके साथ मन्त्रका जप करनेसे जप बहुत थोड़ा होता है, मन टिकता नहीं। उसकी अपेक्षा भगवान्‌के स्वरूपके सामने विनय और विरहके कीर्तन गानेमें मन एकाग्र होता है। बहुत देरतक एक जगह नहीं बैठ सकती। अतः क्या करना

चाहिये? सो इसका जवाब यह है कि भगवान् तो प्रेमके भूखे हैं, वे जितने प्रेमसे प्रसन्न होते हैं, उतने ऊपरके उपचारोंसे नहीं होते। अतः आपको जो रुचता है, जैसे आप करती हैं, वही ठीक है। मेरी रायमें आपने जो अपने साधनका ढंग लिखा है, वह आपके लिये बहुत अच्छा है। कलियुगमें भगवान्‌के नामकी महिमा अपार है। उससे भगवान्‌में प्रेम हो जाता है और प्रेमसे ही भगवान् दर्शन देते हैं।

आपसे जो वे कहते हैं कि अमुक विधिसे जप करनेपर देवताओंके दर्शन होंगे, उसके बाद ऐसा होगा, वैसा होगा। वे भाई आपके प्रेमभावको नहीं समझते, अतः उनकी बातको काममें नहीं लाना चाहिये। आपके मनमें जो केवल भगवान् श्रीकृष्णके ही दर्शनकी इच्छा है, दूसरे किसी देवताके दर्शन आप नहीं चाहतीं—यह बड़े ही सौभाग्यकी बात है। भगवान् इस बातसे बहुत प्रसन्न होते हैं।

आपको भगवान्‌का जो भी एक नाम अधिक-से-अधिक प्रिय लगता हो, उसीका निरन्तर जप करते रहनेकी चेष्टा रखना, हर समय भगवान्‌को याद रखना, अपनी दीनता और विरह-व्याकुलता भगवान्‌को निवेदन करते रहना और उनकी परम दयाके अनुभवकी बाट देखते रहना, उनके हरेक विधानमें मधुर कृपा भरी हुई समझकर बार-बार प्रसन्न होना और कभी किसी कारणसे उनकी विस्मृति हो जाय तो बड़ी भारी हानि समझना—ये ही साधन आपके लिये मेरी रायमें अच्छे हैं।

[६३]

प्रेमपूर्वक हरिस्मरण! तुम्हारा पत्र यथासमय मिला, समाचार विदित हुए। तुम्हारी इच्छा भगवान्‌की ओर बढ़नेकी है तो यह बड़े सौभाग्यकी बात है। इस इच्छाको तीव्र करना ही भगवान्‌की ओर बढ़नेका सुन्दर उपाय है।

यह सर्वथा सत्य है कि मनुष्य-जीवन अमूल्य और बड़ा ही दुर्लभ है। यह भगवान्‌की परम कृपासे ही जीवको मिलता है। इसका एक क्षण भी भगवान्‌की स्मृतिके बिना नहीं जाने देना चाहिये। यही इसका सदुपयोग है। मनुष्य-जन्मके अमूल्य समयको व्यर्थ खोना बड़ी भारी मूर्खता है।

भजनको श्रीकृष्णार्पण करनेके विषयमें पूछा, सो वास्तवमें तो भजनका फल न चाहना, भगवान्‌में प्रेम बढ़ानेके उद्देश्यसे या उनके दर्शनोंके लिये ही भजन करना उसके अर्पण करना ही है। मालाके अन्तमें आचमनीसे जल छोड़ना तो एक प्रकारसे मालाकी पूर्तिका संकेत है, अतः यह हरेक मालाकी पूर्तिपर किया जाना ठीक ही है और प्रत्येक मालाके अन्तमें एक बार जल छोड़ देना ही काफी है। इस समय स्वयं आचमन करनेकी आवश्यकता नहीं है। हाँ, जब मनुष्य किसी स्थानमें बैठकर स्थिर चित्तसे भगवान्‌के नामका जप करना आरम्भ करे, तो उस समय पहले तीन बार आचमन करके और प्राणायाम करके पीछे जप करना आरम्भ करे, ऐसी रीति शास्त्रोंमें बतायी गयी है।

ध्यान और स्तोत्रके बाद जल छोड़नेकी कोई खास आवश्यकता नहीं है।

भगवान्‌को स्नान कराके विधि-विधानसे धूप-दीप आदिके द्वारा पूजन करनेके बाद पहले स्तुति-प्रार्थना करनी चाहिये और अन्तमें नाम-जप तथा ध्यान करना चाहिये। भगवान्‌को भोग या तो अपने हाथसे तैयार की हुई शुद्ध वस्तुका लगाना चाहिये, नहीं तो किसमिस, बादाम, मिश्री आदिका लगा देना चाहिये। बाजारमें बनी हुई मिठाईका भोग नहीं लगाना चाहिये। शामको भी भोग लगाया जाय तो अच्छी बात है। वस्त्रोंके

विषयमें पूछा, सो जैसा तुम करती हो, वही ठीक है। इसमें परिवर्तनकी जरूरत नहीं है।

शिवलिंगके विषयमें बड़ोंका मना करना बहुत उचित है। स्त्रियोंके लिये शिवलिंगपूजा शास्त्रमें मना है। इस विषयमें बड़ोंकी बात अवश्य माननी चाहिये और पूजा अपने इष्टदेवकी ही प्रधानतया करनी चाहिये। इष्टदेव एक परमेश्वर ही होना चाहिये। उस परमेश्वरके शिव, विष्णु आदि किसी भी स्वरूपकी अपनी रुचिके अनुसार उपासना की जा सकती है। दूसरे देवताओंका पूजन भगवान्‌की आज्ञा मानकर अतिथि-पूजनकी भाँति करना चाहिये। इष्टदेव बहुत नहीं हुआ करते। अत: सब देवताओंका पादावसेचन जल एक साथ नहीं मिलाना चाहिये।

पूजाके कपड़े रोज साबुनसे साफ करनेकी जरूरत नहीं है। जलसे अवश्य धो लेना चाहिये। मैले हो जानेपर कभी-कभी शुद्ध साबुनसे भी साफ कर लेना चाहिये।

चर्खा चलाना, घरमें सबको सुख पहुँचानेके लिये घरका काम-धंधा करना—यह स्त्रियोंका धर्म है; परन्तु हरेक काम करते समय भगवान्‌को याद रखना चाहिये। भगवान्‌को कभी नहीं भूलना चाहिये।

गाजर आदि खानेके विषयमें पूछा, सो जो-जो तामसी वस्तुएँ शास्त्रमें निषिद्ध बतायी गयी हैं, उनको नहीं खाना चाहिये। वे अन्त:करणको मोहित करके भजनमें विक्षेप करती हैं। बिना पैसोंके अपने घरवालोंके सिवा दूसरेकी वस्तु नहीं लेनी चाहिये। दूसरेका हक स्वीकार करना सकामभाव है और साधनमें बाधक है।

सांसारिक वस्तुओंके लिये भगवान्‌के सामने भी माँग पेश नहीं करनी चाहिये। ऐसा करनेसे भजनका मूल्य कम हो जाता है। चाहे कितना भी कष्ट सहन क्यों न करना पड़े, हर्षके साथ उसे भगवान्‌का भेजा हुआ पुरस्कार समझकर सहन करना चाहिये और भगवान्‌से कुछ भी याचना नहीं करनी चाहिये।

धार्मिक पुस्तकोंमें अपने हकका पैसा खर्च करना बहुत अच्छा है।

यह फजूलखर्च किसी हालतमें नहीं है। जो इसे फजूलखर्च बताते हैं, वे इसके महत्त्वको नहीं जानते।

नयी डायरीमें भूलें न लिखनी पड़ें। ऐसा खयाल रखनेका विचार लिखा, सो बहुत ही उत्तम है।

अपने हाथसे सूत कातकर कपड़ा बनाकर भेजनेके विषयमें पूछा, सो मैं इस तरह किसीका भेजा हुआ कपड़ा नहीं लेता; क्योंकि मैं एक वैश्य हूँ। अत: कपड़ा तैयार करके तुम या तो भगवान्के काममें लगा देना या स्वयं अपने काममें या अपने घरवालोंके काममें लगा देना।

सूतक-पातकके समय भगवान्की पूजा मानसिक करनी चाहिये। गीता, भागवतका पाठ करनेमें कोई अड़चन नहीं है, वह हरेक अवस्थामें किया जा सकता है। यह भी मानसिक हो तो और भी उत्तम है।

एक जगहसे दूसरी जगह जाना हो, तब यदि भगवान्की मूर्ति साथमें हो और रास्तेमें अवकाश मिल सके, तब तो जैसे घरमें पूजा रोज की जाती है, वैसे ही करनी चाहिये। यदि इस प्रकार सुयोग न मिले, तो मानसिक पूजन करना चाहिये। बीमारीमें यदि स्नान करनेकी शक्ति न हो, तो मानसिक पूजन करना ही ठीक है।

ठंढके दिनोंमें पूजाके कमरेमें सोया जा सकता है। बिस्तरेपर भी सोनेमें अड़चन नहीं है; पर यह खयाल रखना चाहिये कि भगवान्का आसन अपने बिस्तरेसे ऊँचा हो और भगवान्की मूर्ति पैरोंकी ओर न रहे। बल्कि दाहिनी ओर रहे।

सारा समय नियमोंके अनुसार भगवत्-भजनमें ही लगाना चाहिये। अगर बीचमें सहेलियाँ आ जायँ तो उनके साथ भी भगवान्के विषयकी बातचीत करनी चाहिये और उनको भी भगवान्की भक्तिमें लगानेकी चेष्टा करनी चाहिये।

प्याज न खानेसे घरवाले नाराज हों तो उनको नम्रतासे समझाकर प्रसन्न कर लेना चाहिये। यदि वे अनजानमें खिला दें तो उनको विनयपूर्वक उलाहना देना चाहिये एवं फिर ऐसा न करनेके लिये प्रार्थना करनी चाहिये।

शादी, विवाह, होली, दिवालीके अवसरपर मदिरा पीनेकी रिवाज बहुत ही बुरी है। इस आदतको अवश्य ही बड़े जोशके साथ छोड़ देना चाहिये। अगर उसकी तरफ मन जाता हो तो इसे महान् पाप समझकर मनको रोकना चाहिये और इसके लिये भगवान्‌से भी प्रार्थना करनी चाहिये, ताकि यह पाप कभी न बने। मदिरापान बड़ा घोर पाप है। इससे भगवत्-भजनमें बहुत बाधा पड़ती है। तमोगुण बढ़ता है। काम जाग्रत् होता है। आचरण भ्रष्ट हो जाते हैं। अतः इस घोर पापसे अवश्य ही बचना चाहिये।

[६४]

महोदय!

सादर प्रेमपूर्वक हरिस्मरण। आपका पत्र मिला, समाचार मालूम हुए। आपको हिंदी भाषा लिखने नहीं आती, इस कारण अपनी शंकाएँ उर्दूमें लिखीं, सो अच्छी बात है। मैंने आपके पत्रका हिंदीमें अनुवाद कराकर पढ़ लिया है।

× × × ×

(१) आप जो यह समझते थे कि जो कुछ भी सुख या दुःख प्राप्त होता है, वह हमारे कर्मानुसार होता है तथा जो कुछ होता है, वह ईश्वरकी ओरसे हमारे लिये अच्छा और हमारी बेहतरीके लिये ही होता है, सो यह समझना आपका बहुत ही उचित और लाभप्रद था। अतः अब भी उसे छोड़ना नहीं चाहिये। बल्कि अब उस निश्चयको और भी दृढ़ करना चाहिये।

आपके दो पुत्र थे, उनमेंसे एकके मर जानेपर आपके विश्वासमें कोई अन्तर नहीं आया; पर इस बार दूसरे पुत्रकी मृत्युके दुःखमें आपकी विचारधारा स्थिर न रह सकी, सो ऐसा नहीं होना चाहिये था। परमेश्वरकी प्रत्येक क्रियामें दया भरी रहती है, वे किस प्रकार किस बहानेसे हमारा क्या हित करना चाहते हैं—यह सहज ही समझमें नहीं आता; क्योंकि हमारी बुद्धि मायासे ढकी हुई है। अतः जो भी सुख या दुःखकी घटना प्रारब्धके

अनुसार प्राप्त हो, उसमें भगवान्‌की परम दया मानकर संतोष रखना चाहिये और भगवान्‌के भजन-स्मरणमें पहलेसे भी अधिक मन लगाना चाहिये। ऐसा करते रहनेसे शीघ्र ही उनकी दयाका रहस्य भी किसी अंशमें समझमें आ सकता है।

आपने लिखा कि मुझे शान्ति नहीं हुई, अभावका बोध होता है, मनमें ऐसा खेद होता है—मानो कुछ खोया गया है, सो आपका लिखना ठीक है। आसक्ति और मोहके कारण ऐसा होता है; परन्तु वास्तवमें यह किसी तरह भी उचित नहीं है। संसार नाशवान् है, इसका वियोग अनिवार्य है और इसमें जो सुख प्रतीत होता है, वह भी भ्रमसे ही होता है। वास्तवमें तो यह दुःखोंसे ही भरा हुआ है। अतः बड़ी-छोटी सभी प्रकारकी विपत्तियोंमें भगवान्‌की दयाका अनुभव करके संसारकी असारता और अनित्यतापर विचार करके इससे विरक्त होकर भगवान्‌में प्रेम बढ़ाना चाहिये और अपना जीवन भगवान्‌के भजन-स्मरणमें लगाकर सफल बनाना चाहिये। मनुष्य-शरीर बार-बार नहीं मिलता। समय बड़ा ही मूल्यवान् है। इसे संसारकी व्यर्थ चिन्तामें नहीं खोना चाहिये।

(२) आपका यह खयाल बिलकुल ठीक है कि—प्राणी दुनियामें अपने निश्चित श्वासतक ही रहता है तथा एक-दूसरेके साथ जितना सुख-दुःख-भोगका सम्बन्ध होता है, उतना भोगता है। उसके बाद अपने-अपने रास्ते चले जाते हैं।

एक या दो सालका लड़का इस जन्ममें कोई पाप नहीं करता—यह ठीक है; परन्तु मनुष्य-जन्म मिलना और छोटी उम्रमें मर जाना यह इस जन्मके कर्मोंका फल नहीं है। यह तो उसके पूर्वजन्मके कर्मोंका फल भुगताया जाता है। मनुष्य-देहका पूरा लाभ तो परमात्माकी प्राप्ति है। उसे बड़ी उम्र पानेवाले भी कहाँ उठा पाते हैं! वे भी तो ऐसे ही चले ही जाते हैं; फिर क्या किया जाय! इसमें घरवालोंका कोई दोष नहीं है; क्योंकि मृत्युसे किसीको बचा लेना या उसकी आयु बढ़ा लेना—घरवालोंके हाथकी बात नहीं है। घरवालोंका तो यह कर्तव्य है कि अपने

घरका कोई प्राणी मनुष्य-शरीरको छोड़ रहा हो, तो उस समय वह चाहे कितना ही छोटा और नासमझ क्यों न हो, उसका मनुष्य-जन्म सफल बनानेमें सहायक बनें अर्थात् उसे भगवान्‌का नाम, गुण और प्रभाव अन्तकालतक सुनाते रहें।

(३) आपका यह खयाल बिलकुल ठीक है कि बिना कारण यानी बिना अपने पिछले कर्मोंके कोई भी जीव दुनियामें नहीं आता और नहीं जाता। अपने कर्मानुसार ही मनुष्य छोटी या बड़ी उम्रमें मरता है। इस विषयमें और भी जो कुछ आपने लिखा—वह भी ठीक है।

(४) छोटे बालककी सद्‌गति या मुक्तिका उपाय आपने पूछा, सो इसके विषयमें मैं उसकी मृत्युके समय जो घरवालोंका कर्तव्य होता है, वह तो ऊपर लिख ही चुका हूँ। फिर भी मरनेके बाद यदि कोई उसके निमित्तसे भगवान्‌का भजन-स्मरण करे तो अवश्य उसकी शान्तिमें सहायक हो सकता है।

ईश्वरपर विश्वासको दृढ़ बनानेके लिये मेरी समझमें संतोंका जीवन-चरित्र पढ़ना या सुनना बहुत ही लाभप्रद है। उन्होंने किस प्रकार भगवान्‌पर दृढ़ विश्वास रखा और उसका क्या परिणाम हुआ—यह बात बार-बार कानोंमें पड़नेपर वैसा ही दृढ़ विश्वास रखनेकी उमंग मनुष्यके मनमें स्वाभाविक ही उठा करती है। इसके सिवा भगवान्‌के गुणानुवाद और चरित्र सुननेसे और भजन-स्मरणसे भी ईश्वरपर विश्वास बढ़ सकता है।

आशा है कि इस उत्तरसे आपको किसी अंशमें संतोष मिल सकेगा; और भी जो कुछ इस विषयमें पूछना हो, निःसंकोच होकर पूछ सकते हैं।

[६५]

महोदय! सादर विनयपूर्वक हरिस्मरण। आपका पत्र मिला, समाचार मालूम हुए। आप मुझे साष्टांग प्रणाम लिखते हैं—और अन्यान्य बहुत-से बड़ाईके शब्दोंका प्रयोग करते हैं—यह सर्वथा अनुचित है। ऐसा नहीं

करना चाहिये। मैं तो एक साधारण वैश्य हूँ, आप ब्राह्मण हैं—इस तरहके समाचार लिखकर मुझे संकोचमें नहीं डालना चाहिये।

(१) आपने जो संतोंकी बड़ाई लिखी वह तो उचित ही है; परन्तु इस प्रकारके संत मिलने ही कठिन हैं। अगर आप मुझे ही वैसे संतोंका स्थान देकर ऐसे समाचार लिखते हों तो वैसा संत मैं नहीं हूँ। किसीको आज्ञा देनेका या उपदेश देनेका मेरा अधिकार नहीं है। प्रेमी भाई लोग सत्संगके लिये मेरे पास आते हैं, इससे तो मुझे भी लाभ ही है; क्योंकि इस बहाने भगवान्‌के गुणानुवाद और चरित्र सुनने और कहनेका शुभ अवसर मिल जाता है। अतः इसे मैं उन सत्संगी भाइयोंकी और भगवान्‌की दया मानता हूँ। आप मेरा संग चाहते हैं, यह आपके प्रेमकी बात है।

(२) आपने लिखा कि ***'बिनु गुरु भवनिधि तरे न कोई'***; साथ ही यह भी लिखा कि मुझे कोई सद्‌गुरु नहीं मिला, सो ठीक है; किन्तु यह समय बड़ा ही विकट है। इस घोर कलिकालमें प्रथम तो श्रेष्ठ महापुरुष संसारमें ही बहुत कम हैं और जो हैं, उनको पहचानना बड़ा कठिन है, क्योंकि दम्भ बहुत बढ़ गया है। इस समय तो समस्त गुरुओंके गुरु परम पिता परमेश्वरको ही अपना गुरु और पथप्रदर्शक मानकर और सदाचारी सत्संगी भाइयोंका परामर्श लेकर गीतादिमें लिखी हुई भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार तत्परतासे साधनमें लग जाना ही श्रेयस्कर है। आपने मेरी शरण लेनेकी बात लिखी, सो शरण तो भगवान्‌की लेनी चाहिये। न तो मुझमें किसीको शरण देनेकी सामर्थ्य है और न अधिकार ही।

(३) सांसारिक कार्योंको भजनमें बाधक लिखा, सो वास्तवमें कार्य बाधक नहीं हैं। बाधक है विषयोंकी आसक्ति। अतः उससे छूटनेके लिये भगवान्‌के नाम-जपका अभ्यास करना चाहिये। भगवान् और उनके भक्तोंके चरित्र सुनने और पढ़ने चाहिये। निष्कामभावसे दुःखियोंकी सेवा करनी चाहिये। ऐसा करनेसे जैसे-जैसे अन्तःकरण शुद्ध होता जायगा, वैसे-वैसे साधन बढ़ता जायगा और साधनमें रस आने लगेगा, फिर साधन कठिन नहीं मालूम होगा।

(४) साधनके लिये घर छोड़कर संन्यासी बननेमें कोई लाभ नहीं है। जबतक मनुष्यकी विषयोंमें आसक्ति है, वह चाहे घरमें रहे, चाहे वनमें, कभी शान्ति नहीं मिल सकती। अतः घरमें रहकर ही उपर्युक्त प्रकारसे तत्परताके साथ साधन करना चाहिये।

(५) कामदेवके आक्रमणके विषयमें लिखा, सो इसकी शान्ति भगवान्‌का भजन करनेसे और विषयोंमें वैराग्य होनेपर ही हो सकती है। व्यभिचार बड़ा भारी पाप है; इसलिये यदि किसी प्रकार भी सदाचारमें कलंक लगनेका डर हो तो विवाह न करनेकी अपेक्षा विवाह कर लेना अच्छा है।

(६) मित्रका क्या कार्य है, उसके लिये आप चिन्तित क्यों हैं? यह पूरी बात समझमें नहीं आयी। बिना समझे मैं क्या सलाह दे सकता हूँ। भगवान्‌की ही कृपाका भरोसा रखना चाहिये। प्रार्थना भी भगवान्‌से ही करनी चाहिये। मैं न तो भगवान् हूँ और न इस प्रकारका महात्मा ही कि जिसके सामने प्रार्थना करनेमात्रसे किसीका कार्य पूर्ण हो जाय। अतः आपसे यही प्रार्थना है कि भगवान्‌पर विश्वास बढ़ाना चाहिये और उन्हींसे प्रार्थना करनी चाहिये। वे परम समर्थ हैं, सब कुछ कर सकते हैं। जरूरत है प्रेम और विश्वासकी।

[६६]

आपका कृपापत्र प्राप्त हुआ। आप मुझसे अपने संशयकी निवृत्ति कराना चाहते हैं और साथ ही रामचरितमानसके शब्दोंमें यह भी लिखते हैं—***'तौ प्रभु हरहु मोर अग्याना।'*** किन्तु आपको मेरे लिये इस प्रकारके शब्द नहीं लिखने चाहिये। मैं न तो 'प्रभु' कहलानेका अधिकारी हूँ और न किसीका अज्ञान दूर करनेकी ही मुझमें शक्ति है। मैं तो एक साधारण वैश्य हूँ। अवश्य ही विनयपूर्वक आपके प्रश्नोंका उत्तर अपनी बुद्धिके अनुसार देनेकी चेष्टा करता हूँ। यदि इससे आपका कुछ भी समाधान हुआ तो मुझे संतोष होगा।

(१) आपने श्रीरामचरितमानसकी प्रशंसामें जो कुछ लिखा, वह ठीक ही है। आपका यह भी लिखना ठीक है कि 'रामचरितमानसके एक-दूसरेसे भिन्न अनेकों संस्करण छप चुके हैं और सभी अपनी-अपनी दृष्टिसे ठीक हैं। ऐसी दशामें किसके सम्बन्धमें यह कहा जाय कि वह ठीक गोस्वामीजीकी प्रतिके अनुसार है?' क्षेपकोंने तो इस प्रश्नको और भी जटिल बना दिया है। आपने लिखा कि 'यदि कोई इन क्षेपकोंके सहित रामचरितमानसका पाठ करता है तो क्या उसे रामचरितमानसके पाठका फल नहीं मिलेगा?' इसका उत्तर यह है कि अपनी समझसे जो शुद्ध-से-शुद्ध क्षेपकरहित संस्करण हो, उसीका पाठ करना चाहिये। यद्यपि क्षेपकसहित पाठ करनेमें कोई हानि तो नहीं प्रतीत होती, तथापि जहाँ अपने मनमें यह निश्चय हो कि अमुक पाठ क्षेपक है, वहाँ उसका पाठ न करना ही अच्छा है; क्योंकि उससे पाठ खण्डित तो हो ही जाता है। क्षेपक-प्रकरण चाहे शास्त्रानुकूल ही क्यों न हों, वे तुलसीदासजीकी कृति न होनेके कारण रामचरितमानसके अंग तो हो नहीं सकते। ऐसी दशामें जो रामचरितमानसका पाठ करना चाहते हैं, वे रामचरितमानसके बाहरकी चीजका पाठ उसके साथ क्यों करेंगे। आशा है यह बात सहज ही आपकी समझमें आ जायगी।

रही यह बात कि क्षेपक जोड़नेवालोंने न्याय किया या अन्याय, तो इसका भी उत्तर स्पष्ट ही है। जो बात किसी ग्रन्थमें है ही नहीं, उसे अपनी ओरसे उसमें जोड़ देना और उसे ग्रन्थकारकी ही रचना कहकर प्रसिद्ध करना न्यायसंगत कैसे कहा जा सकता है। स्वामीकी दृष्टिमें उनका यह अपराध क्षम्य है या अक्षम्य, इसे तो स्वामी ही जानें; मैं इस विषयमें क्या कह सकता हूँ। इतनी बात इस सम्बन्धमें अवश्य कही जा सकती है कि यदि कोई अपने अपराधको अपराध समझकर उसे प्रभुसे क्षमा कराना चाहे तो उसे वे अवश्य क्षमा कर देते हैं, चाहे उसका वह अपराध दूसरोंकी दृष्टिमें कितना ही अक्षम्य क्यों न हो।

(२) दूसरी बात आपने यह लिखी है कि 'गीता, भागवत तथा रामचरितमानस आदि ग्रन्थोंमें केवल अधिकारियोंको ही इन ग्रन्थोंको सुनानेकी आज्ञा दी गयी है; ऐसी स्थितिमें यत्र-तत्र सर्वसाधारणके सामने इन ग्रन्थोंकी कथा कहना तथा इन्हें मुद्रित एवं प्रकाशित कराके थोड़े मूल्यपर जनसाधारणके हाथों बेचना और इस प्रकार अधिकारी-अनधिकारी—सबके लिये सुलभ बना देना कहाँतक ठीक है और ऐसा करनेसे क्या इन ग्रन्थोंका आदर होनेकी अपेक्षा अनादर अधिक नहीं होता?' आपका ऐसा लिखना शास्त्रीय दृष्टिसे बिलकुल यथार्थ है। वास्तवमें इन ग्रन्थोंका उपदेश तथा प्रवचन अधिकारी भक्तोंके सामने ही होना चाहिये और अधिकारी लोगोंके हाथोंमें ही इन ग्रन्थोंको देना भी चाहिये। परन्तु वर्तमान युग नास्तिकताका युग है। इस युगमें इन ग्रन्थोंका साधारण-सा प्रेमी भी इनका अधिकारी ही माना जाना चाहिये। वैसे अधिकारी, जिनका शास्त्रोंमें उल्लेख मिलता है, इस युगमें मिलने बहुत ही कठिन हैं।

दूसरी बात यह है कि आप जानते हैं, वर्तमान युग प्रचारका युग है। इस समय सब लोग अपना-अपना प्रचार करनेमें लगे हुए हैं। कोई भी इस मामलेमें पीछे नहीं रहना चाहता। ऐसे समयमें जब चारों ओर प्रचारकी धूम मची है, हमलोगोंके लिये इस दिशामें पीछे रहना बुद्धिमानी नहीं कहा जा सकता। इस युगमें प्रचारके सबसे बड़े साधन हैं—प्रेस (पुस्तक तथा समाचारपत्र आदि) और व्याख्यानमंच। सब लोग इन साधनोंका अधिक-से-अधिक उपयोग कर रहे हैं। ऐसी दशामें हमलोग भी यदि उक्त साधनोंका उपयोग न करें तो इसका परिणाम यह होगा कि जगत्‌में दूसरे-दूसरे सिद्धान्तों तथा ग्रन्थोंका तो यथेष्ट प्रचार होगा और हम अपने सिद्धान्तों तथा धर्मग्रन्थोंको जगत्‌के सामने नहीं रख सकेंगे, जिससे हमीं लोग घाटेमें रहेंगे; इसलिये वर्तमान परिस्थितिको देखते हुए इन ग्रन्थोंका जनसाधारणमें प्रचार हानिकारक नहीं कहा जा सकता।

[६७]

आपका कृपापत्र मिला। आपने लिखा कि 'मैं अपने एक सम्बन्धीके यहाँ मुनीम हूँ। वे सदासे मेरे साथ बड़े प्रेम और सहानुभूतिका बर्ताव करते रहे हैं। इस समय उनका फर्म घाटेमें है, इसलिये वे अपने एक व्यापारीका रुपया मार लेनेकी नीयतसे मुझसे नकली जमा-खर्च करनेका आग्रह कर रहे हैं; ऐसी स्थितिमें मुझे क्या करना चाहिये?' इस विषयमें मैं तो स्पष्ट कहूँगा कि आपको उनकी बात नहीं माननी चाहिये। उनकी बात न मानकर आप स्वयं ही इस पापसे नहीं बचेंगे, उन्हें भी एक भारी अनर्थसे बचा लेंगे। कैसे आश्चर्यकी बात है! व्यापारी भाई रात-दिन देखते हैं कि अनेकों कार्य-कुशल और लाखोंकी सम्पत्ति रखनेवाले व्यापारी बात-की-बातमें दीवालिये हो जाते हैं और बहुत-से भोले-भाले भाई कर्जसे दबे होनेपर भी कुछ ही दिनोंमें मालामाल हो जाते हैं। यह देखकर भी उन्हें ईश्वर और प्रारब्धपर विश्वास नहीं होता और अपनी बुद्धिमानीपर भरोसा करके बेईमानी और धोखेबाजी करनेसे नहीं चूकते। भाई! मिलेगा तो वही, जो तुम्हें मिलना है। व्यर्थ पापका बोझा अपने सिरपर लादकर नरकका रास्ता क्यों बनाते हो। यह बात निश्चित है कि धन आदि लौकिक सुख भी पुण्यके ही परिणाम हैं, पापका फल तो सर्वदा दुःख ही है। इसलिये किसी दुःखसे बचनेके लिये पाप करना तो दुःखको और भी बढ़ाना है। ऐसे पापकर्मसे रोकनेमें जो पुरुष सहायता करता है, वह तो सच्चा शुभचिन्तक है। इसलिये इस पापकर्मको न करनेके कारण यदि आपको अपने मालिकके रोषका पात्र भी होना पड़े तो कोई चिन्ता नहीं। आपका कर्तव्य उन्हें नरकमें जानेसे बचाना ही है। देखिये, प्रह्लादजीने तो अन्याययुक्त होनेके कारण अपने पिताकी भी बात नहीं मानी; फिर आपको अपने मालिककी ऐसी बात माननेकी सलाह कैसे दी जा सकती है? अतः इस समय मोहको दूर रखकर अपने सच्चे कर्तव्यका ही पालन करना चाहिये।

[६८]

आपका कृपापत्र मिला। आपने मुझसे जो प्रश्न पूछे हैं, वे बड़े गूढ़ हैं। अपनी साधारण बुद्धिके अनुसार मैं उनके उत्तर नीचे लिखता हूँ। यदि इनसे आपका कुछ सन्तोष हो सका तो बड़ी प्रसन्नताकी बात होगी।

(१) आपने पूछा कि सुषुप्ति-कालमें सच्चिदानन्दांश आत्मा किस रूपमें अपनेको अनुभव करता है, सो उस समय तो अन्तःकरण अपने कारणभूत अज्ञानमें लीन रहता है। आत्माका स्वभाव है कि वह अन्तःकरणकी वृत्तियोंके अनुरूप ही प्रतीत होता है। अतः अविद्यासे आवृत होनेके कारण उस समय उसका अविद्याविशिष्ट रूप ही अनुभवमें आता है। वह उसका वास्तविक स्वरूप नहीं है।

(२) सम्पूर्ण जगत्का निमित्त और उपादान कारण ब्रह्म ही है, इसमें सन्देह नहीं। अतः आत्मा-अनात्मा सब कुछ वस्तुतः सच्चिदानन्दघन परमात्मा ही है। जड जगत् भी परमात्माका ही स्वरूप है अतः धातु या पत्थरकी प्रतिमाओंमें भी भगवद्बुद्धि रखकर उनकी उपासना करना उचित ही है। वह भी भगवत्-साक्षात्कारका एक बड़ा ही सुलभ साधन है।

(३) वैष्णवलोग तो अर्चाविग्रहोंको साक्षात् भगवत्स्वरूप ही मानते हैं। शांकर-सिद्धान्तमें भी भगवद्भक्ति आत्मसाक्षात्कारका एक परम्परा-साधन मानी गयी है। अतः उपासनाका अंग होनेके कारण उस सम्प्रदायमें भी अर्चाविग्रहोंका बड़ा आदर है। इस सम्प्रदायके मठोंमें भी पंचदेवोंकी उपासना होती है।

(४) गीताका जो चरम सिद्धान्त है, वह निश्चय ही संसारके सब धर्मोंको मान्य है। वे भी किसी-न-किसी रूपमें उसीको अपना अन्तिम ध्येय मानते हैं। गीताने **'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥'** (३।३५)—इस श्लोकसे जिस परधर्मकी चर्चा की है, वह तो एक वर्णकी अपेक्षासे वर्णान्तरका धर्म समझना चाहिये। गीताका चरम सिद्धान्त किसी भी व्यक्ति या जातिका धर्म नहीं है। अतः उसे केवल हिंदूसनातनधर्मका

भी अंग नहीं कह सकते। वह तो वह वस्तु है, जिसके लिये संसारके सारे धर्मपथ प्रवृत्त हुए हैं और जो सभीका गन्तव्य स्थान है। अत: उसे केवल सनातनधर्मका अंग समझकर आपने जो पूछा है कि संसारके अन्य धर्मोंके सामने गीताके इस श्लोकके अनुसार हिंदूसनातनधर्मका क्या स्थान है, वह प्रश्न ही नहीं बनता।

(५) आपका यह विचार बहुत ठीक है कि यह स्थिति मनुष्यको चाहे किसी भी धर्म, सम्प्रदाय या अवस्थामें प्राप्त हो जाय, उसका अवश्य कल्याण हो जायगा। ईसाई, मुसलमान आदि अन्यधर्मावलम्बी भी अपनी पद्धतिके अनुसार उपासना करते हुए यदि परमात्मप्राप्तिरूप इस उच्चतम पदका साक्षात्कार कर लें तो वे अवश्य मुक्त हो जायँगे। इस पदकी प्राप्तिके लिये हिंदू होना ही अनिवार्य नहीं है।

[६९]

आपका कृपापत्र मिला। उत्तर देनेमें बहुत देरी हो गयी, कृपया क्षमा कीजियेगा। आपने अपनी शंकाएँ लिखते हुए बहुत संकोच प्रकट किया है, किन्तु इसमें संकोचकी क्या बात है। मैं तो इसे आपकी बड़ी कृपा मानता हूँ, क्योंकि इसी बहाने मुझे कुछ भगवच्चर्चा करनेका अवसर मिल जाता है। आपने जो-जो बातें पूछी हैं, उनके उत्तर मैं संक्षेपमें नीचे लिखता हूँ—

(१) यह ठीक है कि प्रकटरूपसे भजन करनेकी अपेक्षा गुप्तरूपसे मन-ही-मन भगवान्‌का नाम जपना अधिक अच्छा है; परन्तु सब लोग ऐसा कर नहीं सकते। जिन्हें मानसिक जपका अभ्यास नहीं होता, वे प्राय: उसमें असफल ही रहते हैं। इसलिये आरम्भमें तो जोर-जोरसे भगवन्नामकीर्तन करना और मालासे जप करना ही उचित है। साधकको दूसरोंके हँसी-मजाक या कहने-सुननेपर ध्यान नहीं देना चाहिये। यह मजाक तो थोड़े दिनोंमें ही समाप्त हो सकता है। कुछ मनचले मित्रलोग भी आरम्भमें ही ऐसा विघ्न उपस्थित करते हैं, पीछे वे भी शान्त हो जाते हैं। जो लोग वास्तवमें भजनकी आवश्यकता समझते हैं, वे ऐसे विघ्नोंकी परवा नहीं

करते। आप मन-ही-मन भगवान्‌का नाम लेते हैं, यह भी ठीक ही है। यदि भगवत्-दर्शनके लिये आपकी लालसा दिनोंदिन बढ़ रही है तो और क्या चाहिये? भगवान्‌के दर्शनोंके बिना जीवन भार मालूम होने लगे, तभी वे दर्शन देते हैं। अतः इस लालसाको आप खूब बढ़ाइये।

(२) आप एक साथ ही राम-सीता, राधे-कृष्ण, विष्णु-गोविन्द— इन सब नामोंका जप करते हैं, सो ठीक है। यद्यपि तत्त्वतः भगवान्‌के विभिन्न रूपोंमें कोई भेद नहीं है, तथापि यदि आप उनका दर्शन करना चाहते हैं तो जिस रूपमें आप उन्हें देखनेकी लालसा रखते हों उसीसे सम्बन्ध रखनेवाले नामोंका जप करना अधिक श्रेयस्कर होगा। उनमें भी यदि केवल एक ही नामको जपा जाय तो और भी अच्छा होगा।

[७०]

मई मासमें ही आपके दो कृपापत्र मिले। मुझमें तो ऐसी कोई सामर्थ्य नहीं है जो किसीको शरणमें ले सकूँ। आपको मेरे लेख प्रिय लगते हैं, यह आपके ही प्रेम और श्रद्धाकी बात है। आपका अनुराग भगवान्‌के साकार स्वरूपकी अपेक्षा निराकारमें अधिक है, तो इसमें कोई आपत्ति नहीं है; किन्तु निश्चय यही रहना चाहिये कि भगवान् साकार भी हैं और निराकार भी। भगवान्‌को किसी एक ही रूपमें बाँध देना भूल है। वे तो सब कुछ हैं और सबसे परे भी हैं। अतः उन्हें किसी एक ही रूप या नियममें नहीं बाँधा जा सकता।

आपने पूछा कि 'भगवान् तो अनन्त स्वतन्त्र परमात्मा हैं, वे प्रेमबन्धनमें कैसे बँधें?' सो उनका यह अद्‌भुत स्वभाव है। वे परम स्वतन्त्र होते हुए भी तरह-तरहकी लीलाएँ करते हैं। उनसे प्रेम करनेका एक ही उपाय है, वह यह कि उन्हींके हो जाओ। हम अज्ञानवश अपने सांसारिक सम्बन्धोंमें फँसे हुए हैं और इन मोहमय सम्बन्धोंके कारण ही प्रभुको भूले हुए हैं। यदि किसी प्रकार हमारे अंदर यह विवेक जाग्रत् हो जाय कि संसारके सारे सम्बन्ध हमारे माने हुए और मिथ्या हैं, हमारे सच्चे सखा और सम्बन्धी तो श्रीहरि ही

हैं, तो हमारा सारा जीवन उन्हींके लिये हो जायगा। आज हम स्त्री, पुत्र और धनादिके लिये ही अपनी सारी शक्ति नष्ट कर रहे हैं। यदि प्रभुसे नाता जुड़ जाय तो हमारी वह शक्ति उन्हींकी ओर लग जायगी। फिर हम जो कुछ करेंगे उन्हींके लिये करेंगे, जहाँ देखेंगे उन्हींको देखेंगे और अपना सब कुछ उन्हींके चरणोंपर निछावर कर देंगे। इस प्रकार जब हम सर्वत्र भगवद्दृष्टि और भगवत्कर्मके द्वारा श्रीभगवान्को ही आत्मसमर्पण कर देंगे तो प्रभु ही हमारे सर्वस्व हो जायँगे। उनकी तो यह बान ही है कि 'उन्हें जो जिस प्रकार भजता है, वे भी उसे उसी प्रकार भजते हैं' (गीता ४।११) । अतः जब हम उन्हें आत्मसमर्पण करेंगे, तब वे भी अपनेको हमारे अधीन कर देंगे। इस प्रकार अनन्यभावसे प्रभुको आत्मसमर्पण करना ही उन्हें अपने अधीन करनेका प्रधान साधन है, इसीके द्वारा वे अनन्त और स्वतन्त्र परमात्मा भक्तके प्रेमबन्धनमें बँधते हैं।

[७१]

सादर हरिस्मरण। आपका २२ जूनका कृपापत्र मिला। आजकल बुद्धिवादका युग है, इसका आपके ऊपर भी प्रभाव पड़ा है तथा इससे आपको खेद भी है—यह मालूम हुआ। यह सब होते हुए भी आप ईश्वरमें विश्वास रखते हैं, नित्यप्रति २५,००० प्रणव-मन्त्रका जप और गीतापाठ एवं सत्संगादि भी करते हैं—यह बड़ी प्रसन्नताकी बात है। आपका आचार और मूर्तिपूजनमें विश्वास नहीं है, तथापि आप उसका विरोध नहीं करते—यह बहुत अच्छा है। लोकमें सब साधन सबके लिये नहीं होते। तथापि कोई साधन अपने लिये उपयोगी न होनेपर भी दूसरोंके लिये बहुत लाभदायक हो सकता है। इसलिये उसका विरोध नहीं करना चाहिये।

आप लिखते हैं कि मेरा सच्चा झगड़ा साकार-निराकारका है। यह ठीक है कि कई बार भगवन्मूर्तिका दर्शन अपनी भावनाके अनुसार भी होता है; तथापि ऐसा नहीं समझना चाहिये कि भगवान्का कोई

साकार स्वरूप है ही नहीं। यदि आप सूक्ष्मतासे विचार करेंगे तो संसारमें ऐसा कोई भी मूर्त पदार्थ नहीं है, जो साकार-निराकार उभयरूप न हो। साकारका अर्थ है इन्द्रियग्राह्य और निराकारका अर्थ है इन्द्रियातीत। वास्तवमें सभी इन्द्रियगोचर पदार्थ कारणावस्थामें इन्द्रियातीत हैं। देखिये, रसतन्मात्रा ही जल और बरफ बन जाती है। जिस समय वह बरफके रूपमें है, उस समय भी उसमें सूक्ष्मरूपसे रसतन्मात्रताका अभाव नहीं है। हमारी नेत्रेन्द्रिय स्थूल है, इसलिये उसका उसे स्थूलरूप ही दिखायी देता है। इसी प्रकार जो पर्वत-वृक्षादि अत्यन्त स्थूल जान पड़ते हैं, मूलतः वे गन्धादि तन्मात्राओंके ही परिणत रूप हैं। इस प्रकार सारा स्थूल प्रपंच मूलतः इस समय भी पंचभूत-तन्मात्राओंके सिवा और कुछ नहीं है, इस बातको आप स्वप्नके दृष्टान्तसे अच्छी तरह समझ सकते हैं। स्वप्नावस्थामें सब पदार्थ स्थूल-से जान पड़ते हैं, परन्तु वास्तवमें वे मनःकल्पित होनेके कारण सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म हैं। वहाँ भी वे स्वप्न-परिकल्पित इन्द्रियोंके विषय होनेके कारण स्थूल जान पड़ते हैं। इस प्रकार जैसे स्वप्नावस्थाके पदार्थ स्थूल दिखायी देते हुए भी उसी कालमें सूक्ष्म भी हैं, उसी प्रकार जाग्रत् पदार्थ भी एक ही कालमें स्थूल भी हैं और सूक्ष्म भी। ये सूक्ष्मतन्मात्र भी मूलतः अहंकार तथा महत्तत्त्वके क्रमसे अव्यक्त प्रकृति ही हैं।

इस प्रकार जब ये बाह्य दृश्य पदार्थ एक ही कालमें साकार और निराकार—उभयरूप हैं, तब इन सबके परमकारण सर्वसमर्थ श्रीभगवान् एक ही साथ साकार-निराकार उभयरूप क्यों नहीं हो सकते? वास्तवमें तो इस दृश्यप्रपंचके रूपमें भी वे ही स्थित हैं। यह विश्वब्रह्माण्ड उन्हींका आधिभौतिक स्वरूप है, तथा इसमें उन्हींका स्वभाव प्रतिफलित हो रहा है। अतः वे साकार भी हैं, निराकार भी हैं और साकार-निराकारसे विलक्षण भी हैं।

[७२]

आपका १० जूनका कृपापत्र मिला। आपने जो प्रश्न किये हैं, उनके विषयमें मेरा जैसा विचार है, नीचे लिखता हूँ—

(१) विद्यार्थीकी दिनचर्याके विषयमें पूछा, सो उसे ब्राह्म मुहूर्तमें (सूर्योदयसे ४ घड़ी पहले) शय्या त्याग देनी चाहिये। सूर्योदयसे पूर्व शौच, स्नान, सन्ध्यादिसे निवृत्त हो लेना चाहिये। यदि विद्यार्थी शूद्रवर्णका हो अथवा त्रिवर्णमें होनेपर भी उसका यज्ञोपवीत-संस्कार न हुआ हो तो उसे सन्ध्योपासन न करके केवल भगवन्नाम-जप करना चाहिये। द्विजातीय विद्यार्थीके लिये भी सन्ध्योपासनके पश्चात् गायत्री और भगवन्नामका जप करना आवश्यक है। इस प्रकार नित्यकर्मसे निवृत्त होकर व्यायाम और दुग्धपान करना चाहिये। फिर दोपहरतक अथवा पाठशालाका जैसा समय-विभाग हो उसके अनुसार विद्याध्ययन करना चाहिये। इसी बीचमें सुविधाके अनुसार भोजन भी कर लेना चाहिये। सायंकालमें खुली हवामें कुछ व्यायाम आदि करना भी बहुत जरूरी है। सायंकालमें स्नानके बाद सायंसन्ध्या, गायत्रीजप आदि करने चाहिये। फिर ब्यालू करके पढ़े हुए पाठका अभ्यास करनेके अनन्तर दस बजेके लगभग सो जाना चाहिये। अपने पाठ्यक्रमके सिवा विद्यार्थियोंको गीतादि धार्मिक ग्रन्थोंका भी स्वाध्याय करना चाहिये तथा प्रात:काल उठनेपर नित्यप्रति माता, पिता एवं अन्य गुरुजनोंको प्रणाम करना चाहिये।

(२) ब्रह्मचर्य पालन विद्यार्थियोंका प्रधान कर्तव्य है। इस अवस्थामें ब्रह्मचर्यको नष्ट करना तो अपने जीवनको ही बरबाद करना है। ब्रह्मचर्यरक्षाके लिये नीचे लिखे नियमोंका विशेषरूपसे पालन करना चाहिये।

१. स्त्रियोंके संसर्गसे सब प्रकार दूर रहे। उनसे हँसी-मजाक करना या उनकी ओर देखना भी खतरेसे खाली नहीं है। इसी प्रकार बालकोंके साथ भी कुत्सितभाव और उनका स्पर्श आदि नहीं करना चाहिये।

२. सब प्रकारके कुसंगसे दूर रहना चाहिये। नाटक-सिनेमा देखना,

स्त्रियोंके विषयमें चर्चा करना अथवा स्त्रियासक्त पुरुषोंसे मिलना भी इस व्रतमें बहुत घातक हैं।

३. सब तरहकी शौकीनीसे दूर रहे। बढ़िया-बढ़िया वस्त्रोंका शौक, सिरपर केश-विन्यास करना अथवा पान-सिगरेट आदि व्यवहार करना इसमें बहुत हानिकारक हैं।

४. ब्रह्मचारीका आहार-विहार बहुत सात्त्विक होना चाहिये। मिर्च, खटाई, चाट, मिठाई आदिसे उसे दूर रहना चाहिये।

५. जहाँतक बने, कभी खाली न रहे। खाली मस्तिष्कमें अनेक प्रकारके कुविचार घर कर लेते हैं; अतः उसे सर्वदा विद्याध्ययनके अतिरिक्त सत्संग, स्वाध्याय, सद्विचार और सेवादि सत्कार्योंमें लगे रहना चाहिये।

(३) सात्त्विक आहारका विवरण श्रीगीताजीमें इस प्रकार दिया है—

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रिया: ॥

(१७। ८)

'आयु, बुद्धि, बल, (मानसिक और शारीरिक शक्ति) आरोग्य, सुख और प्रीतिको बढ़ानेवाले रसयुक्त, चिकने और स्थिर रहनेवाले तथा स्वभावसे ही मनको प्रिय—ऐसे आहार अर्थात् भोजन करनेके पदार्थ सात्त्विक पुरुषको प्रिय होते हैं।' इस प्रकार घी, दूध, ताजे फल, गेहूँ, चावल, मूँग तथा शाक-तरकारी आदि जो सुपाच्य और शक्तिवर्धक पदार्थ हैं, इस कोटिमें आ सकते हैं।

(४) यदि पढ़नेमें मन न लगे तो भी नियमपूर्वक पढ़ते ही रहना चाहिये। जो काम नियमपूर्वक किया जाता है, उसमें धीरे-धीरे मन भी लगने ही लगता है। अतः नियमपूर्वक अभ्यास करना ही मनके लगनेका एकमात्र साधन है।

(५) आपने ***'जौं मम चरन सकसि सठ टारी। फिरहिं राम सीता मैं हारी॥'*** इस चौपाईका उल्लेख करते हुए पूछा कि अंगदजीको रावणके सामने ऐसी बात कहनेका क्या अधिकार था, सो इसका सीधा अर्थ तो

यह है कि यदि कोई दुष्ट मेरे पैरको उठा सकेगा तो राम और सीता तो लौट ही जायँगे; मैं हार जाऊँगा। ऐसा कहनेमें तो कोई अधिकारका प्रश्न है ही नहीं। यदि इसका ऐसा अर्थ भी कोई माने कि श्रीरामजी लौट जायँगे और मैं सीताजीको हार जाऊँगा, तो इसमें श्रीअंगदजीका दृढ़ आत्मविश्वास ही कारण है। उन्हें निश्चय था कि कोई भी राक्षस मेरा पैर उठा नहीं सकेगा; इसीसे उन्होंने ऐसी बात कह डाली।

आपके प्रश्नोंके उत्तरमें ऊपर जो कुछ लिखा गया है, सम्भव है, उससे आपको कुछ सन्तोष हो सकेगा।

॥ श्रीहरिः ॥

नित्यपाठ, साधन-भजन एवं कर्मकाण्ड-हेतु

कोड	पुस्तक
592	**नित्यकर्म-पूजाप्रकाश** [गुजराती, तेलुगु भी]
1593	**अन्त्यकर्म-श्राद्धप्रकाश**
1895	**जीवच्छ्राद्ध-पद्धति**
1809	**गया श्राद्ध-पद्धति**
1928	**त्रिपिण्डी श्राद्ध-पद्धति**
1416	**गरुडपुराण-सारोद्धार** (सानुवाद)
1627	**रुद्राष्टाध्यायी**-सानुवाद
1417	**शिवस्तोत्ररत्नाकर**
1774	**देवीस्तोत्ररत्नाकर**
1623	**ललितासहस्रनामस्तोत्रम्**- [तेलुगु भी]
610	**व्रत-परिचय**
1162	**एकादशी-व्रतका माहात्म्य**— मोटा टाइप [गुजराती भी]
1136	**वैशाख-कार्तिक-माघमास-माहात्म्य**
1588	**माघमासका माहात्म्य**
1899	**श्रावणमासका माहात्म्य**
1367	**श्रीसत्यनारायण-व्रतकथा**
052	**स्तोत्ररत्नावली**—सानुवाद [तेलुगु, बँगला भी]
1629	,, ,, सजिल्द
1567	**दुर्गासप्तशती**— मूल, मोटा (बेड़िया)
876	,, मूल गुटका
1727	,, मूल, लघु आकार
1346	,, सानुवाद मोटा टाइप
118	,, सानुवाद [गुजराती, बँगला, ओड़िआ भी]
489	,, सानुवाद, सजिल्द [गुजराती भी]

कोड	पुस्तक
1281	**दुर्गासप्तशती** (विशिष्ट सं०)
866	,, केवल हिन्दी
1161	,, केवल हिन्दी मोटा टाइप, सजिल्द
819	**श्रीविष्णुसहस्रनाम**-शांकरभाष्य
206	**श्रीविष्णुसहस्रनाम**—सटीक
226	**श्रीविष्णुसहस्रनाम**—मूल, [मलयालम, तेलुगु, कन्नड, तमिल, गुजराती भी]
1872	**श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्** -लघु
509	**सूक्ति-सुधाकर**
1801	**श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्** (हिन्दी-अनुवादसहित)
207	**रामस्तवराज**—(सटीक)
211	**आदित्यहृदयस्तोत्रम्**— हिन्दी-अंग्रेजी-अनुवादसहित [ओड़िआ भी]
224	**श्रीगोविन्ददामोदरस्तोत्र** [तेलुगु, ओड़िआ भी]
231	**रामरक्षास्तोत्रम्**— [तेलुगु, ओड़िआ, अंग्रेजी भी]
1594	**सहस्रनामस्तोत्रसंग्रह**
1850	**शतनामस्तोत्रसंग्रह**
715	**महामन्त्रराजस्तोत्रम्**

नामावलिसहितम्

कोड	पुस्तक
1599	**श्रीशिवसहस्रनामस्तोत्रम्** (गुजराती भी)
1600	**श्रीगणेशसहस्रनामस्तोत्रम्**
1601	**श्रीहनुमत्सहस्रनामस्तोत्रम्**
1663	**श्रीगायत्रीसहस्रनामस्तोत्रम्**
1664	**श्रीगोपालसहस्रनामस्तोत्रम्**
1665	**श्रीसूर्यसहस्रनामस्तोत्रम्**

कोड	पुस्तक
1706	श्रीविष्णुसहस्त्रनामस्तोत्रम्
1704	श्रीसीतासहस्त्रनामस्तोत्रम्
1705	श्रीरामसहस्त्रनामस्तोत्रम्
1707	श्रीलक्ष्मीसहस्त्रनामस्तोत्रम्
1708	श्रीराधिकासहस्त्रनामस्तोत्रम्
1709	श्रीगंगासहस्त्रनामस्तोत्रम्
1862	श्रीगोपाल स० -सटीक
1748	संतान-गोपालस्तोत्र
563	शिवमहिम्नःस्तोत्र [तेलुगु भी]
230	अमोघ शिवकवच
495	दत्तात्रेय-वज्रकवच सानुवाद [तेलुगु, मराठी भी]
229	श्रीनारायणकवच [ओड़िआ, तेलुगु भी]
1885	वैदिक-सूक्त-संग्रह
054	भजन-संग्रह
1849	भजन-सुधा
140	श्रीरामकृष्णलीला-भजनावली
144	भजनामृत
142	चेतावनी-पद-संग्रह
1355	सचित्र-स्तुति-संग्रह
1800	पंचदेव-अथर्वशीर्ष-संग्रह
1214	मानस-स्तुति-संग्रह
1092	भागवत-स्तुति-संग्रह
1344	सचित्र-आरती-संग्रह
1591	आरती-संग्रह—मोटा टाइप
153	आरती-संग्रह
1845	प्रमुख आरतियाँ-पॉकेट
208	सीतारामभजन
221	हरेरामभजन— दो माला (गुटका)
222	हरेरामभजन—१४ माला
225	गजेन्द्रमोक्ष-सानुवाद, [तेलुगु, कन्नड़, ओड़िआ भी]

कोड	पुस्तक
385	नारद-भक्ति-सूत्र एवं शाण्डिल्य भक्ति-सूत्र, सानुवाद [बँगला, तमिल भी]
1505	भीष्मस्तवराज
699	गङ्गालहरी
1094	हनुमानचालीसा— हिन्दी भावार्थसहित
1917	,, मूल (रंगीन) वि०सं०
227	,, (पॉकेट साइज) [गुजराती, असमिया, तमिल, बँगला, तेलुगु, कन्नड, ओड़िआ भी]
695	हनुमानचालीसा—(लघु आकार) [गुजराती, अंग्रेजी, ओड़िआ, बँगला भी]
1525	हनुमानचालीसा—अति लघु आकार [गुजराती भी]
228	शिवचालीसा—असमिया भी
1185	शिवचालीसा-लघु आकार
851	दुर्गाचालीसा, विन्ध्येश्वरीचालीसा
1033	,, लघु आकार
232	श्रीरामगीता
383	भगवान् कृष्णकी कृपा तथा दिव्य प्रेमकी....
203	अपरोक्षानुभूति
139	नित्यकर्म-प्रयोग
524	ब्रह्मचर्य और संध्या-गायत्री
236	साधक-दैनन्दिनी
1471	संध्या, संध्या-गायत्रीका महत्त्व और ब्रह्मचर्य
210	सन्ध्योपासनविधि एवं तर्पण-बलिवैश्वदेवविधि— मन्त्रानुवादसहित [तेलुगु भी]
614	सन्ध्या